

बी.ए.(प्रोग्राम)

सैमेस्टर-I

संस्कृत

**DISCIPLINE SPECIFIC CORE COURSE  
SANSKRIT POETRY**

**History of Sanskrit Poetry**

(संस्कृत पद्यकाव्य का इतिहास)

अध्ययन सामग्री : अन्विति VI



**SCHOOL OF OPEN LEARNING  
University of Delhi**

संस्कृत-विभाग

सम्पादिका : डॉ. रमा जैन

## DSC : SANSKRIT POETRY

### अध्ययन सामग्री : अन्विति VI

	पृष्ठ संख्या
पाठ 1 लौकिक संस्कृत साहित्य	1-6
पाठ 2 संस्कृत में काव्य-साहित्य की उत्पत्ति एवं विकास	7-17
पाठ 3 संस्कृत में खण्डकाव्य (गीति-काव्य) का उद्भव एवं विकास	18-29

सम्पादक : डॉ. रमा जैन



मुक्त शिक्षा विद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

5, कैवेलरी लेन, दिल्ली-110007

## संस्कृत में लौकिक संस्कृत साहित्य

माधुर्य एवं बोधगम्यता की दिव्यसरसता में ही लौकिक संस्कृत साहित्य का सुललित गाम्भीर्य निहित है। यह वाङ्मय लौकिक होता हुआ भी गीर्वाण एवं दैनिक है तथा सामान्य रूप से यह दिव्यादिव्य है। संस्कृत भाषा भारोपीय (भारत-योरोपीय) भाषा परिवार की आवश्यक कड़ी है। इस परिवार के दो प्रमुख विभागों केन्दुम और शतम् में से इसका सम्बन्ध शतम् से है। शतम वर्ग की विभिन्न शाखाओं में से यह भाषा ईरानी शाखा के अन्तर्गत है। यद्यपि साधारणतः 'संस्कृत' शब्द का प्रयोग लौकिक संस्कृत के लिए किया जाता है तथापि भाषाओं की गणना की दृष्टि से यह शब्द उसके दोनों पक्षों-वैदिक और लौकिक के लिए प्रयुक्त किया जाता है। भाषाशास्त्र अथवा तुलनात्मक भाषाविज्ञान की दृष्टि से यह अमूल्य रत्न है। निस्सन्देह संस्कृत-साहित्य का महत्व बहुत अधिक है। इसकी बड़ी उम्र, एक बहुत बड़े भूखण्ड पर इसका फैला हुआ होना, इसकी अर्थ संपत्ति, इसकी रचना, चारुता संस्कृति के इतिहास की दृष्टि से इसका मूल्य, कुछ ऐसी बातें हैं, जिनके कारण इस महान मौलिक और पुरातन साहित्य के प्रति हमारा अनुराग बिल्कुल उचित सिद्ध होता है।

संस्कृत साहित्य केवल विषय-व्यापकता के लिए ही नहीं, रचना सौष्ठव के लिए भी प्रसिद्ध है। सूत्र रचना में भारतीय लोग जगत की सभी जातियों में सिद्धहस्त हैं। भारतीय धर्म एवं दर्शन के विकास के परिचय के लिए संस्कृत साहित्य का अध्ययन प्रायः अनिवार्य है। मैकडानल ने लिखा है-योरोपीय वंश की केवल भारत-निवासिनी शाखा ही ऐसी है, जिसने वैदिक धर्म जैसे एक बड़े जातीय धर्म और बौद्ध-धर्म नामक एक बड़े सार्वभौम धर्म की रचना की।

संस्कृत-साहित्य की एक और विशेषता इसकी मौलिकता है। ईसा के पूर्व चतुर्थ शताब्दी में यूनानियों का आक्रमण होने से बहुत पहले आर्य-सभ्यता-विकसित हो चुकी थी और बाद में होने वाली विदेशियों की विजयों का इस पर सर्वथा कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

### यूरोप पर संस्कृत-साहित्य का प्रभाव

अठारहवीं शताब्दी की अंतिम दशाब्दियों में जब यूरोप-निवासी संस्कृत से परिचित हुए, तब इसने वहाँ एक नये युग का प्रारम्भ कर दिया क्योंकि इसने भारतीय और यूरोपीय दोनों जातियों के इतिहास-पूर्व के सम्बन्धों पर आश्चर्यकारी नया प्रकाश डाला। इसने यूरोप में तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की नींव डाली, तुलनात्मक पौराणिक-कथा विद्या में अनेक परिवर्तन करा दिये, पश्चिमीय विचारों को प्रभावित किया और भारतीय पुरातत्त्व के अन्वेषण में स्थिर अभिरुचि उत्पन्न कर दी।

यद्यपि संस्कृत भाषा के विद्वानों ने इस दिशा में सूक्ष्म अनुसंधान और महान् परिश्रम किया है, तथापि संस्कृत साहित्य का इतिहास अभी तक अंधकार में छिपा है। भास और कालिदास जैसे सुप्रसिद्ध कवियों के जीवन-काल के निर्धारण में विद्वानों के मतों में दशाब्दियों का नहीं बल्कि पाँच-छः शताब्दियों का भेद है। "भारतीय साहित्य के इतिहास में दी हुई सारी की सारी तिथियाँ कागज में लगाई हुई उन पिनो के समान हैं, जो फिर निकाल ली जाती हैं"।

संस्कृत में इतिहास का यह अभाव क्यों है? इसका पूरा संतोषजनक उत्तर देना तो कठिन है पर निम्नलिखित कुछ बातें अवश्य ध्यान में रखी जा सकती हैं।

(1) भारतीय मनोविज्ञान की और परिस्थितियों की विशेषताएँ-कर्म का और भाग्य का सिद्धान्त, दैनिक हस्ताक्षेपों में मंत्र-यंत्र में तथा जादू में विश्वास, वैज्ञानिक मनोवृत्ति का अभाव ऐसी बातें हैं जो एक बड़ी सीमा तक इतिहास के अभाव का कारण हैं।

(2) 1200 ई. तक भारत में राजनीतिक घटनाओं की गति में भी शायद कोई सर्वप्रिय बनने वाली बात पैदा नहीं हुई।

(3) भारतीयों में राष्ट्रीयता के भावों का न होना भी इसका एक प्रमुख कारण है।

(4) यदि किसी रचयिता का नाम दिया गया है तो उसके वंश का, उसके माता-पिता का नामोल्लेख नहीं किया गया है और एक नाम के अनेक रचयिता हो सकते हैं।

(5) कभी-कभी एक ही नाम भिन्न-भिन्न रूपों में पाया जाता है। भारतीयों में नामों के पर्याय तथा संक्षिप्त रूप व्यवहार में लाने की बड़ी प्रवृत्ति पाई जाती है।

किन्तु यह परिणाम नहीं निकालना चाहिए कि भारतीयों में ऐतिहासिक बुद्धि का अभाव था। इतिहास के क्षेत्र में पुराणों और अनेक ग्रंथों के अतिरिक्त निश्चित तिथियों से युक्त अनेक शिलालेख विद्यमान हैं। ज्योतिष के ग्रंथकारी ने ग्रंथसमाप्ति तक की निश्चित तिथियाँ दी हैं।

संस्कृत में लिखित बृहद् साहित्य में मुख्यतः वैदिक और लौकिक साहित्य संस्कृत ये दो खण्ड हैं। वैदिक साहित्य के मुख्यतः पाँच विभाग हैं—(1) **संहिताएं** (सूक्तों के संग्रह), (2) **ब्राह्मण**, (3) **आरण्यक** (4) **उपनिषद्**, (5) **कल्पसूत्र**, जो प्रधानतः तीन प्रकार के हैं, (अ) **श्रौतसूत्र**, जो यज्ञों से सम्बन्धित हैं, (ब) **गृह्यसूत्र**, जिनका गृह के विधानों से सम्बन्ध है, (स) धर्मसूत्र, जो सामाजिक नियमों एवं व्यवहारों से सम्बन्धित हैं। ये तीन प्रकार के सूत्र 'कल्पसूत्र' के अन्तर्गत लिए जाते हैं। इनके अतिरिक्त हैं **शुल्वसूत्र** जो यज्ञवेदी सम्बन्धी रेखाणित रूपों का नियोजन करते हैं और इस कारण कभी-कभी कल्पसूत्रों के ही भीतर गिने जाते हैं। उपर्युक्त कल्पसूत्रों के अतिरिक्त कुछ और भी ग्रंथ हैं जिनका सम्बन्ध **ध्वनि**, **विज्ञान**, **व्याकरण**, **छन्द** और **नक्षत्र** विद्या से है। यह ग्रन्थ वेदाङ्गों में परिगणित होते हैं। ये ग्रन्थ भी सूत्र शैली में ही मिलते हैं और इनका समय है वैदिक एवं लौकिक संस्कृत का सन्धिकाल।

### लौकिक संस्कृत का वैदिक संस्कृत से भेद

लौकिक संस्कृत-साहित्य का वैदिक साहित्य से अनेक प्रकार का भेद पाया जाता है। वैदिक साहित्य शुद्धतः धार्मिक है तथा इस में सभी लौकिक तत्त्वों का बीज समाहित है। लौकिक संस्कृत साहित्य प्रधान रूप से धार्मिक-धर्मनिरपेक्ष, अथवा धर्म में इसे लोक-परलोक से ही सम्बन्धित कहा जा सकता है। इस साहित्य में महाकाव्य (रामायण एवं महाभारत), पुराण एवं अन्य काव्य (जिनमें गद्य काव्य भी सम्मिलित हैं) नाटक, अलंकारशास्त्र, दर्शन, सूत्र, विधि अथवा नियमकला, वास्तुशास्त्र, औषधी (आयुर्वेद), गणित, मशीन उद्योग तथा अनेकों और सम्बन्धी ग्रंथ और अन्य विभिन्न विद्याओं की शाखाएँ भी प्राप्त होती हैं।

लौकिक साहित्य की भाषा तथा वैदिक साहित्य की भाषा में भी अन्तर पाया जाता है। दोनों के शब्दरूप तथा धातुरूप अनेक प्रकार से भिन्न हैं। वैदिक संस्कृत के रूप केवल भिन्न ही नहीं हैं अपितु अनेक भी हैं, विशिष्टतया वे रूप जोकि क्रिया रूपों तथा धातुओं के स्वरूप से सम्बन्धित हैं। इस सम्बन्ध में दोनों साहित्यों की कुछ महत्वपूर्ण भिन्नताएँ निम्नलिखित हैं :-

(1) शब्दरूप की दृष्टि से उदाहरणार्थ, लौकिक संस्कृत में केवल ऐसे रूप बनते हैं जैसे-देवाः जना (प्रथम विभक्ति बहुवचन)। जबकि वैदिक संस्कृत में इनमें रूप देवासः जनामः भी बनते हैं। इसी प्रकार, प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति बहुवचन में 'विश्वानि' रूप वैदिक साहित्य में 'विश्वा' भी बन जाता है। तृतीय बहुवचन में वैदिक संस्कृत में 'देवैः' इस रूप के साथ-साथ 'देवेभिः' भी मिलता है। इसी प्रकार सप्तमी विभक्ति एकवचन में व्योम्नि अथवा व्योमनि इन रूपों के साथ-साथ वैदिक संस्कृत में 'व्योमन्' यह रूप भी प्राप्त होता है।

(2) वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में क्रियारूपों और धातुरूपों में भी विशेष अन्तर है। वैदिक संस्कृत इस विषय में कुछ अधिक समृद्ध है तथा उसमें कुछ और रूपों को उपलब्धि होती है। जबकि लौकिक संस्कृत में क्रिया पदों की अवस्था बतलाने वाले ऐसे केवल दो ही लकार हैं—लोट् और विधिलिङ् जोकि लट्प्रकृति अर्थात् वर्तमानकाल की धातु से बनते हैं। उदाहरणार्थ पठ् से पठतु और पठेत् ये दोनों बनते हैं। वैदिक संस्कृत में क्रियापदों की अवस्था को द्योतित करने वाले दो और अधिक लकार हैं—लेट् लकार एवं निषेधात्मक लुङ्लकार (Injunctive) (जो कि लौकिक संस्कृत में केवल निषेधार्थक 'मा' से प्रदर्शित होता है, और जो लकार लौकिक संस्कृत में पूर्णतः अप्राप्य है)। इन चारों अवस्थाओं के द्योतक लकार वैदिक संस्कृत में केवल लट् प्रकृति से ही नहीं बनते हैं किन्तु लिट् प्रकृति और लुङ् प्रकृति से भी बनते हैं। इस प्रकार वैदिक संस्कृत में धातुरूप अत्यधिक मात्रा में हैं। इसके अतिरिक्त लिङ् प्रत्यय सम्बन्धी भेद वैदिक संस्कृत में पाये जाते हैं जैसे **मिनीमसि** भी (लट्, उत्तम पुरुष बहुवचन में) प्रयुक्त होता है परन्तु लौकिक संस्कृत में **मिनीम** ही प्रयुक्त होता है। जहाँ तक धातु से बने हुए अन्य रूपों का प्रश्न है, लौकिक संस्कृत में केवल एक ही 'तुमुन्' (जैसे गन्तुम्) मिलता है जबकि वैदिक संस्कृत में इसके लगभग एक दर्जन रूप मिलते हैं जैसे **गन्तवै**, **गमध्यै**, **जीवसै**, **दातवै** इत्यादि।

(3) पुनश्च, लौकिक संस्कृत आगे चलकर अधिकाधिक कृत्रिम अथवा सुबद्ध होती गई है और इसके उदाहरण हमें सुबन्धु और बाणभट्ट के गद्यकाव्यों में प्रयुक्त भयावह समासों में मिलते हैं। इस कला में वह अपने क्षेत्र के अन्य गद्यकारों से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

(4) कुछ वैदिक शब्द लौकिक संस्कृत में अप्राप्य हैं और कुछ नये शब्दों का उद्भव भी हो गया है। उदाहरणार्थ, वैदिक शब्द 'अपस्' का 'कार्य' के अर्थ में प्रयोग लौकिक संस्कृत में लुप्त हो गया है। लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त 'परिवार' शब्द वैदिक संस्कृत में अनुपलब्ध है। यह वैदिक एवं लौकिक संस्कृत की अपनी विशेषता है।

शब्दार्थ विज्ञान की दृष्टि से कुछ शब्दों में एक विशिष्ट परिवर्तन हुआ है जैसे 'ऋतु' जिसका वैदिक संस्कृत में अर्थ है 'शक्ति' और लौकिक संस्कृत में उसका अर्थ यज्ञ' हो गया है।

भाषा में परिवर्तन के अतिरिक्त दोनों साहित्यों में कुछ और भिन्नताएँ प्राप्य हैं—

(1) प्रथमतः, जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, वैदिक साहित्य, प्रधानतः धार्मिक है जब कि लौकिक संस्कृत अपने वर्णविषय की दृष्टि से धर्म के साथ-साथ लौकिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बद्ध है।

(2) दोनों की आत्मा यद्यपि अभिन्न है तथापि अभिन्नता में भी भिन्नता के दर्शन होते हैं। वैदिक वाङ्मय, मुख्यतः जैसा कि ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में हमें प्राप्त होता है, आशावादी है जबकि लौकिक संस्कृत साहित्य निराशावादी है, इस निराशावाद की झलक बौद्धों के 'सर्व दुःख' में भी है। बौद्धों के व्यवहार्यपक्ष 'करुणा' और 'मैत्री' का उद्घोष भी वैदिक साहित्य की मौलिकता है।

(3) वैदिक धर्म भी परवर्ती काल में अव्यक्त रूप से विशिष्ट परिवर्धित हुआ दिखाई देता है। यहाँ तक कि वैदिक युग के प्रधान देवता जैसे इन्द्र, अग्नि, वरुण को लौकिक संस्कृत में अपेक्षाकृत विशिष्टता प्राप्त नहीं हुई परन्तु ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनों को वेदों में केवल गौण स्थान ही प्राप्त था, परवर्ती काल में इन्हें एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया। इस काल में कुछ नए देवी देवताओं—गणेश, कुबेर, लक्ष्मी और दुर्गा इत्यादि का भी वैदिक मूल से विकास हुआ।

(4) परवर्ती, विशेषतः आठवीं और नवीं शताब्दी के बाद के, कवियों में अत्युक्ति का आश्रय ग्रहण करने की ओर अधिक झुकाव है, जैसे माघ श्रीहर्ष आदि में जबकि पूर्ववर्ती कवियों जैसे अश्वघोष (बौद्ध कवि), भारा और कालिदास में अत्युक्ति का अभाव है। वैदिक वाङ्मय में अत्युक्ति का महा अभाव है।

(5) लौकिक संस्कृत में छन्दोबद्ध रूपों के प्रयोगों की ओर हमें एक विशिष्ट आग्रह दिखायी देता है। वैदिक युग में भी छन्दोबद्ध रूपों का आधिक्य मिलता है, किन्तु वहाँ विशेषतः यज्ञ सम्बन्धी साहित्य में गद्य का भी प्रयोग हुआ, जैसे यजुर्वेद और ब्राह्मणों में। लौकिक संस्कृत काल में छन्दोबद्ध रूपों के प्रयोग की ओर इतना अधिक झुकाव है कि यहाँ तक कि वैदिक ग्रन्थ (परकसंहिता, सुश्रुतसंहिता इत्यादि) भी पद्य में ही लिखे गये। आश्चर्य तो इस बात से होता है कि कोशों की रचना (जैसे अमरकोश) भी छन्दों में ही हुई। कुछ आगे चलकर परवर्ती काल में बाण और सुबन्धु ने गद्य काव्यों के लेखन की शैली का विकास किया, जो कि बड़े-बड़े समासों से मिश्रित होने के कारण अत्यन्त कृत्रिम कही जाती है। इसके अतिरिक्त पूर्ववर्ती काल में सूत्र-रूप में दार्शनिक ग्रंथों को लिखने की प्रणाली का भी प्रचलन हुआ।

आगे चलकर हमें छन्दों की प्रणाली का भी एक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। वैदिक छन्द जगती, त्रिष्टुभ, अनुष्टुभ तो लौकिक संस्कृत में सर्वथा अनुपलब्ध है। जबकि लौकिक संस्कृत के छन्द वंशस्थ, उपेन्द्रवज्रा शिखरिणी आदि वेदों में पूर्णतः अप्राप्य हैं। हां, यह अवश्य सच है कि लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त श्लोक छन्द वैदिक अनुष्टुभ छन्द का ही रूप हैं।

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत की भिन्नताओं की ओर दृष्टिपात करते हुए यह ध्यान देना आवश्यक है कि सिद्धान्त की दृष्टि से दोनों एक दूसरे से काफी मिलती-जुलती हैं। वेदों में कुछ और अधिक ध्वनियां (Sounds) मिलती हैं, जैसे कि 'ळ' 'ळ' अन्य ध्वनि-सिद्धान्त दोनों के समान ही हैं और उनमें कोई भी वैसा अन्तर नहीं दिखायी देता जैसा कि प्राकृत बोलियों में हमें प्राप्त होता है।

### संस्कृत बोलचाल की भाषा

संस्कृत के बोलचाल की भाषा होने का प्रश्न कई बार उठा है और इसका कारण संस्कृत का अपरिवर्तनशील स्वभाव भी हो सकता है। उस समय से ही जबकि पाणिनि ने अपने अभर व्याकरण अष्टाध्यायी का निर्माण किया, इस व्याकरण का निर्माण इतना अमिट और दृढ़ सिद्ध हुआ कि उसके नियम आगे आने वाले सभी युगों में मान्य हुए और संस्कृत के रूप भी बहुत कुछ रूढ़िबद्ध हो गये और इन 500 वर्षों में भी इनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। संस्कृत भाषा की इस अपरिवर्तनशीलता के कारण कुछ आलोचकों का यह मत था कि संस्कृत बोलचाल की भाषा कभी नहीं थी एवं उसका प्रयोग केवल साहित्य निर्माण के लिए ही होता था। कुछ लोगों ने यहाँ तक घोषणा की कि संस्कृत का निर्माण कृत्रिम रूप में ब्राह्मणों द्वारा अपने पोरोहित्य कर्म के लिए किया गया। यह मत इतना अज्ञान-पूर्ण एवं तर्क की परिधि से परे है कि वह एकदम आलोचकों एवं विद्वानों के द्वारा अग्राह्य हुआ। यह भाषा जो कि इतनी अपूर्व सुन्दर तथा अर्थवती है, वह एस्पेरेन्टो की तरह एक बनावटी तथा निर्मित भाषा नहीं हो सकती। निम्नलिखित बातों से यह सिद्ध होता है कि संस्कृत कभी बनावटी भाषा नहीं थी और वह काले-काले सार्वजनिक बोलचाल की भाषा अधिक रही होगी :-

(1) निरुक्तकार यास्क ने (लगभग 700 ई. पूर्व.) संस्कृत की भाषा कहा है और वैदिक संस्कृत को इससे पृथक् माना है। (निरुक्त अध्याय 1 पाद 2) उन्होंने संस्कृत के प्राच्य और उदीच्य भेदों का उल्लेख किया है (निरुक्त 2-2)।

(2) पाणिनि के व्याकरण 'अष्टाध्यायी' में कुछ ऐसे नियम मिलते हैं जो केवल बोलचाल एवं दैनिक व्यवहार की भाषा के लिए प्रयुक्त हुए होंगे। उदाहरणार्थ, पाणिनि का यह नियम कि सम्बोधन में आवाज को प्लुत (लम्बी) करना चाहिए जैसे यदि किसी को दूर से बुलाना हो (हे राम 3 त्वामागच्छ)<sup>1</sup> और यही नियम आशीर्वचन प्रणाम या नमस्कार के प्रत्युत्तर में भी लागू होता है (जैसे, आयुष्मान् भव वेवदत्त 3)<sup>2</sup>। पाणिनि ने वैदिक भाषा के छन्दस और लोक प्रचलित भाषा के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग करके दोनों का अन्तर स्पष्ट किया है।<sup>3</sup>

(3) संस्कृत शब्दों के विभिन्न रूप जो कि उस समय देश के विभिन्न भागों में प्रचलित थे उनके भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। इन विभिन्नताओं का उल्लेख यास्क तक के समय (लगभग सातवीं शताब्दी ई. पू.) तक किया गया है। पाणिनि और पतंजलि में भी ये उल्लेख मिलते हैं। ऐसे उल्लेख तो तभी प्राप्त हो सकते हैं जबकि संस्कृत बोलचाल की भाषा रही हो।<sup>4</sup>

(4) इसके अतिरिक्त कुछ मुहावरेदार प्रयोग भी हमें प्राप्त होते हैं जो कि केवल बोलचाल की भाषा में ही विकसित हुए होंगे, जैसे—**दण्डादण्ड** (दण्डों से युद्ध), **केशाकेशि** (बालों को नाँच-नाँचकर युद्ध), **हस्ताहस्ति** (हाथापाई)।

(5) कात्यायन (चतुर्थ शताब्दी ई. पू.) ने अपने वार्तिकों में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि लोक में प्रचलित शब्दों को आधार मानकर ही संस्कृत व्याकरण की रचना हुई है।<sup>5</sup> विभिन्न प्रान्तों, प्रदेशों में प्रयुक्त धातुओं और शब्द रूपों को लेकर धातु पाठ आदि में विभिन्न धातुओं एवं शब्दों का संकलन किया गया है।<sup>6</sup>

(6) पतंजलि (150 ई. पू. के लगभग) ने अनेक उदाहरण देकर पाणिनि और कात्यायन के कथनों की पुष्टि की है। 'सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे', 'लोकतः', 'प्रियतद्धिता दक्षिणात्याः' आदि के द्वारा पतंजलि ने स्पष्ट किया है कि विभिन्न प्रान्तों में बोली जाने वाली भाषा में भेद होते थे। पतंजलि ने वैयाकरण और सारथि के बीच एक संवाद का भी उल्लेख किया है जिससे सिद्ध होता है कि एक वैयाकरण की अपेक्षा एक सूत को प्रचलित शब्दों की व्युत्पत्ति तथा प्रयोग का अधिक ज्ञान का।<sup>7</sup>

(7) पाश्चात्य विद्वानों—जैसे कीथ एवं ग्रियसन ने भी यह माना है कि रामायण और महाभारत काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी (Keith and Grierson, JRAS 1906)। मैक्डानल की मान्यता है "इसमें सन्देह नहीं कि ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में हिमालय और विन्ध्य के मध्यवर्ती समस्त आर्यावर्त में संस्कृत बोलचाल की भाषा रही हो (संस्कृत साहित्य का इतिहास—हिन्दी अनुवाद पृष्ठ 19)।

(8) संस्कृत नाटकों में भी संस्कृत के बोलचाल की भाषा होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। नाटकों में उच्च कोटि के पात्र संस्कृत बोलते हैं और स्त्रियाँ बोलती हैं शोरसेनी प्राकृत, तथा परिचर एवं अन्य अधम पात्र विभिन्न प्राकृतों का प्रयोग करते हैं। इतना तो स्पष्ट है कि नाटक अपने रचनाकाल की स्थिति का निश्चित रूप से प्रदर्शन करते हैं। नाटकों में तत्कालीन समाज का सजीव चित्र प्राप्त है अतः यह स्पष्ट है कि उन दिनों अनपढ़ व्यक्ति प्राकृत बोलते थे एवं सभ्य मनुष्य संस्कृत।

(9) कहानियों में सुना जाता है कि भिक्षुओं ने बुद्ध के समक्ष यह प्रस्ताव रखा था कि वे अपनी बोलचाल की भाषा संस्कृत को बना लें। इससे भी यही सिद्ध होता है कि संस्कृत बुद्ध के समय में बोलचाल की भाषा थी।

(10) प्रसिद्ध बौद्धकवि अश्वघोष (प्रथम शताब्दी ईसवी) ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए अपने ग्रन्थ संस्कृत में लिखे। इससे यह अनुमान करना सुगम है कि संस्कृत प्राकृत की अपेक्षा साधारण जनता को अपनी ओर अधिक खींचती थी तथा संस्कृत ने कुछ समय के लिए अपने खोये पद को पुनः प्राप्त कर लिया था। बौद्ध और जैन दार्शनिकों ने अपने दार्शनिक ग्रन्थ प्राकृत या अपभ्रंश में न लिखकर संस्कृत में ही लिखे।

1. 'दूराद्धूते च' (अष्टा. 8.2.84)

2. 'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' (अष्टा. 8.2.83)

3. बहुलं छन्दसि (2.4.39) भाषायां सदयसश्रुतः (3.2.108)

4. प्राचां ष्क. (4.1.17) उदीचामातः (7.3.46)

5. लोकतोऽथं प्रयुक्ते शब्द प्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः (महा. 1 अहिक)

6. सर्वे देशान्तरे (महा. आहिक 1)

7. महाभाष्य (2.4.56)

(11) ई. दूसरी शताब्दी से प्रारम्भ करके मिलने वाले शिलालेख क्रमशः संस्कृत में अधिक मिल रहे हैं और ई. छठी शताब्दी से लेकर, केवल जैन शिलालेखों को छोड़कर, 19वीं शती ईसवी तक सारे शिलालेख संस्कृत में ही मिलते हैं। यह बात भी सभी मानेंगे कि शिलालेखों प्रायः उसी भाषा में लिखे जाते हैं, जिसे सर्वसाधारण पढ़ और समझ सकते हैं। इस काल के प्रायः सभी स्तम्भ लेख, दानपत्र, राजकीय शासनपत्र और राजप्रशस्तियाँ आदि संस्कृत में ही मिलते हैं।

(12) ह्यूनसांग स्पष्ट शब्दों में कहता है कि ई. सातवीं शताब्दी में बौद्ध लोग धर्मशास्त्रीय मौखिक वाद-विवाद में संस्कृत का ही प्रयोग करते थे। जैन लोग भी शास्त्रीय या धार्मिक चर्चा में संस्कृत का प्रयोग करते थे। जैन लेखक सिद्धार्थि ने (107 ई.) प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत के प्रयोग को अधिक लाभप्रद, सरल एवं श्रुतिसुखद बताया है। (मैकडानल-संस्कृत साहित्य का इतिहास हिन्दी अनुवाद पृ. 19-20)

(13) गुप्तकाल और राजा भोज के समय में (11वीं शती ई.) संस्कृत भाषा को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। उस समय साधारण जनता भी संस्कृत में बोलने की क्षमता रखती थी।

(14) राजशेखर ने अपनी काव्य मीमांसा में (पृ. 50) यह उल्लेख किया है कि उज्जयिनी के राजा साहसांक उपाधिधारी विक्रमादित्य के राजपरिवार में अन्तःपुर में भी संस्कृत का प्रयोग किया जाता था।

(15) काश्मीरी कवि बिल्हण (11वीं शती ई.) ने उल्लेख किया है कि काश्मीरी स्त्रियाँ संस्कृत, प्राकृत और काश्मीरी भाषा ठीक समझती थीं (विक्रमांक देवचरित, 18-6)।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि संस्कृत सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत (सुसभ्य) व्यक्तियों के द्वारा बोली जाती थी। वास्तव में यह बात प्रत्येक भाषा के साहित्यिक रूप पर भी लागू होती है जिसका सम्बन्ध उन व्यक्तियों से होता है जो सर्वथा शिक्षित होते हैं। पाणिनि के समय तक की संस्कृत एक विशेष परिस्थिति से सम्बद्ध है। सम्भवतः ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय बोलचाल की संस्कृत तथा साहित्यिक संस्कृत में विशेष अन्तर नहीं था अर्थात् अभिव्यक्ति में कोई अधिक नियमबद्धता नहीं थी। किन्तु जब से पाणिनि ने अपने अतिप्रसिद्ध एवं अविस्मरणीय व्याकरण का निर्माण किया, उस समय से अभिव्यक्ति का एक सुदृढ़, सही और सम्यक् मार्ग का अवलम्बन होना प्रारम्भ हुआ और इस मार्ग से पराङ्मुखता को कोई आश्रय नहीं दिया गया और न उसे सहन ही किया गया। इन परिस्थितियों में बोलचाल की संस्कृत तथा साहित्यिक संस्कृत के रूपों में भेद होना अस्वाभाविक भी नहीं है। इस तरह साहित्यिक प्रयोग केवल शिक्षित एवं सुसंस्कृत व्यक्तियों-जिन्हें शिष्ट कहा जा सकता है उनके द्वारा प्रयुक्त किये जाते होंगे। इसका ही नाम संस्कृत अथवा परिष्कृत भाषा पड़ा। इसके विपरीत वह भाषा जिसका प्रयोग अशिक्षित लोगों के द्वारा किया गया, उसका नाम पड़ा 'प्राकृत' अर्थात् जन-साधारण की भाषा। धीरे-धीरे जब प्राकृत ने भी साहित्यिक रूप धारण करना प्रारम्भ किया तब वह भाषा जो बोलचाल में प्रयुक्त होती रही उसे अपभ्रंश (भाषा का भ्रष्ट रूप) नाम दिया गया। भाषा की ये इकाइयाँ उसकी शक्ति एवं समृद्धि का परिचय देती हैं। इतनी समृद्ध भाषा को बोलचाल की भाषा न मानना उसके साथ अन्याय एवं अतर्कपूर्ण है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि पाणिनि के काल से ही संस्कृत शब्दों के सभी रूप रूढ़िबद्ध एवं अपरिवर्तनीय बन गये, और उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन करना अग्राह्य हो गया और इस तरह संस्कृत एक अपरिवर्तनशील भाषा बन गयी। इसीलिए इसका नाम पड़ा देववाणी अर्थात् वह भाषा जिसमें देवताओं के समान ही अपरिवर्तनशीलता एवं अक्षीणता अथवा अक्षरता होती है। संस्कृत के इस अपरिवर्तनशील व्यापार ने भारतवासियों के बीच एक अद्वितीय ऐक्य को उद्भावित किया है जो कि केवल भौगोलिक ही नहीं है अपितु सामयिक भी है। हजारों वर्षों के इस दीर्घ काल में संस्कृत के साहित्यिक स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं आया है। यह वही भाषा आज भी है जिसे एक युग में कभी वाल्मीकि ने प्रयुक्त किया था और जिसका प्रयोग आज का संस्कृत विद्वान् भी करता है। आज भी संस्कृत में गद्य पद्य एवं काव्य लिखे जा रहे हैं। आज भी संस्कृत में पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं। आज भी संस्कृत ग्रन्थों को कण्ठस्थ करने की परम्परा है। विवाहादि संस्कार सन्ध्या हवन, गायत्री पाठ एवं धार्मिक पूजन की सभी विधियाँ संस्कृत में ही होती हैं। यह व्यापार उस एक अद्वितीय ऐक्य को भारतवासियों एवं उनके पूर्वजों के बीच उपस्थित करता है जिनके धर्म, दर्शन, समाजशास्त्र एवं संस्कृति की भाषा भी यही संस्कृत थी।

संस्कृत ने भारत की भौगोलिक एकता का भी निर्माण किया है। यह वही भाषा है जो कश्मीर से कन्याकुमारी तक एवं कामरू (आसाम) से सौराष्ट्र तक सम्पूर्ण भारत में बोली जाती थी। संस्कृत भारत में एक सूत्र का कार्य करती थी, जिसमें उत्तर एवं दक्षिण भारत के लोग एक दूसरे से विचार विनिमय करते थे। प्रारम्भ में, संस्कृत उत्तर-पश्चिम, उत्तर-प्रदेश, हरियाणा एवं पूर्वी पंजाब में बोली जाने वाली भाषा का साहित्यिक रूप था। क्योंकि संस्कृत का सही प्रयोग उसके साहित्य एवं व्याकरण के अध्ययन के द्वारा ही किया जा सकता था, अतः इस भाषा का अधिकारपूर्ण अध्ययन सारे देश में एक रूप में ही किया गया। यह सच है कि दक्षिण के लोग उत्तर भारत के लोगों की अपेक्षा संस्कृत के ज्ञान एवं उसके उपाजन में अधिक बड़

गए थे। यह बात मुसलमानों के भारत आगमन के बहुत पूर्व ही हो चुकी थी। उदाहरणार्थ सातवीं शताब्दी तथा उसकी आगे की शताब्दियों में साहित्य दिग्गज आचार्य कुमारिल भट्ट एवं आद्य जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जैसे विद्वान् दक्षिण में ही प्रादुर्भूत हुए। श्री शंकराचार्य, जो कि केरलवासी थे, ने अपने अद्वैत वेदान्त दर्शन की शिक्षा संस्कृत के माध्यम से ही समस्त भारत को दी।

### लौकिक संस्कृत का प्रारम्भ

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि लौकिक संस्कृत वैदिक संस्कृत से किन बातों में भिन्न है। अब संक्षेप में यह बतलाना आवश्यक है कि लौकिक संस्कृत कैसे और कब प्राचीन वैदिक संस्कृत से विकसित हुई। विकास की अवस्था—एक भाषा के अन्तस्तल से दूसरी भाषा के अन्तस्तल में आना—एक मन्द प्रक्रिया है, इस कारण इस विषय में कोई निश्चय नहीं किया जा सकता न ही यह कहा जा सकता है कि वैदिक से लौकिक संस्कृत में परिवर्तन का क्रम कब प्रारम्भ हुआ। वैसे तो हमें वेदों में ही कुछ बोलियों के स्वरूपों का आभास मिल जाता है। यद्यपि वेद प्रधानतः धार्मिक है फिर भी हमें उनमें कुछ धर्मनिरपेक्ष साहित्य के आभास भी मिल जाते हैं, उदाहरणार्थ संवाद-सूक्तों, ऋग्वेद के अक्ष (क्रीड़ा) सूक्त तथा और अन्य सूक्तों में। प्रो. ए. ए. मेकडानल का यह विचार इस विषय में बहुत ही उपयुक्त तथा सारगर्भित है—

“यह समझना एक बड़ी भूल होगी कि संस्कृत साहित्य वैदिक साहित्य की समाप्ति पर ही उद्भूत हुआ अथवा यह समझना कि यह उस वैदिक साहित्य का श्रृंखलाबद्ध तथा परम्परानुवर्ती विकसित स्वरूप है। लौकिक साहित्य की दृष्टि से वह भी अपने प्रारम्भिक रूपों में, जो कि अब अनुपलब्ध हैं वेदों के धार्मिक साहित्य का ही समकालीन रहा होगा। वैदिक साहित्य की अन्तिम कृतियों—उपनिषदों और सूत्रों के अतिरिक्त एक ओर तो बौद्धों के पालि साहित्य का विकास हुआ और दूसरी ओर संस्कृत साहित्य के पूर्वतम रूप का निर्माण आदिकाव्यों की कथाओं के रूप में हुआ। हम देख चुके हैं कि ऋग्वेद में भी कुछ ऐसे सूक्त हैं जो केवल वर्णनात्मक प्रकृति के हैं। बाद में हमें ब्राह्मण साहित्य में धर्माख्यानों की एक बहुत बड़ी संख्या मिलती है जो कि मुख्य रूप से गद्य में हैं किन्तु कभी आंशिक रूप से छन्द-बद्ध भी है जैसे कि ऐतरेयब्राह्मण की शुनःशेष कथा। पुनश्च, यास्क के निरुक्त में, जिसका समय ई. पू. 5वीं शताब्दी तो होना ही चाहिए, गद्य में निबद्ध अनेक कहानियाँ मिलती हैं, एवं वैदिक आख्यानों के प्राचीनतम उपलब्ध संकलन छन्दबद्ध ‘बृहद्देवता’ का समय और अधिक परवर्ती काल का नहीं माना जा सकता।”



## संस्कृत में काव्य-साहित्य की उत्पत्ति एवं विकास

### महाकाव्य का लक्षण

साहित्य-दर्पणकार महाकवि विश्वनाथ के अनुसार योग्यता, आकांक्षा एवं आसत्तियुक्त पदोच्चय ही वाक्य है। 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य है। इस प्रकार के वाक्यों का समूह ही महावाक्य (महावन की भाँति) अथवा महाकाव्य कहलाता है। सामान्यतया जो पद्य रचना आलंकारिको के नियमों का ठीक-ठीक पालन करती है उसे महाकाव्य समझा जाता है। महाकाव्य शब्द का प्रयोग पद्य काव्य के लिए होता था। आधुनिक विद्वान् महाकाव्य को (Court-epic) राज्यसभा काव्य कहते हैं। कई विद्वानों ने महाकाव्य के लिए कृत्रिम वीरचरित (Artificial epic) अथवा भूषणात्मक वीरचरित (Ornamental-epic) शब्दों का प्रयोग किया है। महाकाव्य से अभिप्रेत है एक विशेष प्रकार की पद्य रचना जो एक ओर तो इतिहास तथा पुराण से भिन्न हो और दूसरी ओर ऐतिहासिक काव्य से भी पृथक् हो। इतिहास तथा पुराण का खण्डों तथा अध्यायों में विभाजन होता है किन्तु महाकाव्य का केवल सर्गों में ही। पुराण में कोई प्रमुख केन्द्रीय विषय नहीं होता है किन्तु महाकाव्य में प्रमुख केन्द्रीय विषय की ही प्रधानता रहती है और वर्णन स्थल इसके अखण्ड अंश होते हैं। महाकाव्य में अवान्तर कथाएँ नहीं होती हैं।

1. भामह (700 ई.) ने भामहलंकार (1/18/23) में
2. दण्डी (7वीं शती) ने काव्यादर्श (1/4/22) में, अग्निपुराण (अध्याय 337) में और
3. विश्वनाथ (1350 ई.) ने साहित्य दर्पण (6/315-325) में महाकाव्य के लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। साहित्यदर्पण में प्राप्त महाकाव्य का लक्षण सर्वाङ्गण और व्यापक है। विश्वनाथ ने महाकाव्य का लक्षण देते हुए कहा है—

महाकाव्य संक्षिप्त न हो और सर्गों में विभक्त होना आवश्यक है। एक सर्ग में तीस से दो सौ पद्यों की संख्या हो। महाकाव्य में कम से कम आठ सर्ग और अधिक से अधिक तीस सर्ग होने चाहिए। इसका नायक देवता, कुलीन क्षत्रिय या एक ही वंश के अनेक कुलीन राजा हो सकते हैं।

महाकाव्य का प्रारम्भ आशीः, नमस्क्रिया अथवा कथावस्तुनिर्देश से होना चाहिए। विषय ऐतिहासिक किसी जनश्रुति से लिया गया हो। उद्देश्य, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से कोई एक हो। इसमें सूर्योदय, चन्द्रोदय, ऋतु, पर्वत, समुद्र, नगर, उद्यान, जलक्रीड़ा, मधुपान रीतिकेलि, पर्व, उत्सव, अनुरागियों के वियोग अथवा संयोग, विवाह, पुत्रजन्म, युद्ध, यात्रा, नायकविजय, मंत्रणा मृगया इत्यादि का ललित वर्णन होना चाहिए। इसमें रसों, पावों और अलंकारों का समावेश हो। प्रधान रसशृंगार वीर अथवा शान्त हो और अन्य रसों का समावेश गौण रूप से हो। छन्द आकर्षक हों और सारा सर्ग एक छन्द से व्याप्त हो किन्तु सर्गान्त का पद्य अन्य छन्द में हो। सर्ग के अन्त में भावी कथा का संकेत भी होता है। महाकाव्य का नाम कवि, कथानक नायक या प्रतिनायक के नाम पर होना चाहिए।

महाकाव्य में नायक धीरोदात्त होना चाहिए। धीरोदात्त नायक आत्मश्लाघा न करने वाला क्षमावान्, अतिगम्भीर, हर्ष, शोकादि से अनभिभूत, स्थिर, दृढव्रत और प्रह्व होता है।

महाकाव्यों का उद्भव ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों, इन्द्र, विष्णु, वरुण और उषा आदि के स्तुति मंत्रों तथा नाराशंसी और गाथाओं से हुआ है। ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में इन आख्यानों का बृहद रूप मिलता है, यही स्वरूप आगे चलकर महाकाव्य के रूप में परिवर्तित हो गया। जूनागढ़ के एक शिलालेख में रुद्रामा की परिष्कृत काव्य रचना प्राप्त होती है। इसी प्रकार इलाहाबाद के शिलालेख में समुद्रगुप्त का नाम न केवल कवियों के आश्रयदाता के रूप में अपितु कवि के रूप में भी मिलता है। राजकीय शिलालेखों की सत्ता ही काव्य साहित्य की सत्ता का प्रबल प्रमाण है।

कालिदास से पूर्व काल में, रामायण रचयिता महर्षि वाल्मीकि को यथार्थतः आदिकवि और रामायण को आदि-काव्य कहा गया है। पाणिनि (450 ई. पू.) का नाम भी पातालविजय तथा जाम्बवतीविजय नामक दो महाकाव्यों से सम्बद्ध है। पाणिनि-अध्यारोपित कुछ पद्य बहुत ही काल्पनिक हैं—

**गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं**

**गर्जन्ति यत्प्रावृषि कालमेघाः।**

**अपश्यती वत्समिवेन्दुविम्बं**

**तच्छर्वरी गौरिव हुंकरोति॥**

वार्तिककार वदररुचि (350 ई. पू.) का नाम भी स्वर्गारोहण नामक काव्य के कर्ता के रूप में लिया जाता है। महाभाष्यकार पतंजलि (150 ई. पू.) ने भी महानन्द काव्य की रचना की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत काव्य के बहुत सारे अंश की परिवृद्धि ई. पू. द्वितीय शताब्दी और प्रथम शताब्दी के बीच हुई है। हाल की सतसई तथा गुणादय की बृहत्कथा इसके उदाहरण हैं। शिलालेख भी अलंकृत काव्यशैली के नमूने हैं। यद्यपि वे लौकिक (श्रेण्य) संस्कृत में लिखे गये हैं किन्तु कुछ शिथिलता उनमें भी विद्यमान है। शिलालेखों में वर्णनस्थल उच्चकोटि के हैं और वे कवि की योग्यता का भी प्रदर्शन करते हैं। गिरनार के शिलालेख में साधारणतया, स्पष्टता, माधुर्य, विविधता सौन्दर्य, काव्योचित परिभाषा की उन्नति आदि कई गुण पाये जाते हैं। अतः यह सिद्ध होता है कि कालिदास से पहले ही संस्कृतकाव्य और काव्य शास्त्र विद्यमान थे। इसके अतिरिक्त, कालिदास स्वयं अपने पूर्ववर्ती रोमिल्ल सोमिल्ल आदि का नामोल्लेख करते हैं।

संस्कृत काव्य के मूल्यांकन के समय हमें यह ध्यान रखना होगा कि इसका क्रमिक विकास किस वातावरण में हुआ। बौद्धमत का निराशावाद धीरे-धीरे लुप्त हो गया और आनन्द व प्रमोद जोर पकड़ने लगा। अतः इन कृतियों में रति की प्रधानता रही। पुष्पसायक कामदेव की भक्ति सर्वत्र फैलने लगी। परिणाम यह हुआ कि पारिभाषिक शास्त्र भी काव्य से ओत-प्रोत हो गये।

संस्कृतकाव्य न केवल राजपरिवार सम्बन्धी कथाओं से ओत-प्रोत रहा अपितु वात्स्यायन कामसूत्र से भी अत्यधिक प्रभावित हुआ। इन काव्यों में वर्णित मनोरंजन व विकास के साधन कामसूत्र के लिए गये हैं। इस काल के काव्य सिद्धान्त व अभ्यासक्रम पर अलंकार शास्त्र के ग्रन्थों का अगाध प्रभाव पड़ा है।

नारी सौन्दर्य का सूक्ष्म वर्णन इस काव्य की एक और विशेषता है जो कभी-कभी इन्द्रिय विषयक होने के कारण निन्द्य समझा जाता है। यद्यपि इस तरह की अभिरुचि सौन्दर्य मीमांसा के विकसित लोकाचार की ओर संकेत करती है, किन्तु यह अवश्य मानना पड़ेगा कि ऐसे वर्णन कई जगह शोचनीय हुए हैं। ऐसी कविताएँ रसिक सहृदयों के लिए लिखी गई हैं इसका तात्पर्य यह है कि ऐसी कविताएँ दक्षता से एक अभ्यस्त और निष्णात विशेषज्ञ के लिए लिखी गई हैं। वे कल्पना की अपेक्षा विद्वता का अधिक प्रदर्शन करती हैं। भाषा का असहज व क्लिष्ट प्रयोग कभी कभी अर्थग्रहण में बाधक बन गया है। यहाँ तक कि कई कवियों ने अपनी कविताओं को केवल विद्वानों के लिए, न कि मन्द बुद्धिजनों के लिए लिखने का गर्व किया है। इन कविताओं का क्षेत्र भी सीमित रहा है क्योंकि इनका विषय रूढ़िबद्ध है। इन कवियों ने कभी-कभी रीति और शब्द-रचना की अत्यधिक अभिरुचि के कारण विषय और कथावस्तु की उपेक्षा की है। असंगत और सामान्य वर्णन कथाप्रवाह के बाधक बन गये हैं। काव्य के स्वीकृत आदर्शों के अनुवर्तन के उत्साह में कवियों ने अनुचित दृश्यों व विषयों के वर्णन करने का प्रयत्न किया है। यह भी कहा जाता है कि कविताएँ कवि के निजी अनुभवों को प्रकट नहीं करती हैं और एक वर्ग अथवा गण के सामान्य अनुभवों का प्रदर्शन करती हैं। अतः संस्कृत काव्य रचनाएँ न रह कर सामान्य आदर्श रचनाएँ बन गयी हैं। उनके नियमबद्ध व औपचारिक स्वरूप की खूब प्रशंसा की गई है। संस्कृत कवि संस्कृत शब्दों के माधुर्य में निमग्न होते रहते हैं। संस्कृत में शब्द रचना पर्याप्त महत्त्व है। काव्य का लालित्य लम्बे-लम्बे समस्त पदों की देन है। ऐसा होने पर भी इन काव्यों के कई गुणों को भी स्वीकार करना होगा। पुरुषोचित तथा साहसिक गुणों के वर्णन में और जीवन के सामान्य भावों अथवा अन्तर्वेग के प्रदर्शन में ये काव्य श्रेष्ठ हैं। इन काव्यों की कृत्रिमता प्राकृतिक दृश्यों के अद्भुत भावों पर आधारित हैं जो सुपरिचित और वास्तविक हैं। कई कवि निरीक्षण की नवीनता का प्रदर्शन करते हैं। भावप्रधानता तथा अद्भुत कल्पना रीति की संपूर्णता तथा निरूपण की सूक्ष्मता सहित काव्य के आवश्यक अंग समझे गये हैं। अविनीत उपभोग के लिए यह नहीं है। गद्य भी इसके बाद संग्रह और अलंक्रिया के कारण काव्यात्मक समझा जाता है।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काव्य शैली की आवश्यक विशेषताएँ, अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग, किसी एक प्रकार के दृश्यों का वर्णन, रति भाव के दर्शन की प्रधानता, शब्द रचना की कृत्रिमता और प्रकृति वैशिष्ट्य के लिए आदरभाव आदि में निहित है।

## काव्य

संस्कृतकाव्य का स्वर्णयुग हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के सुवर्ण काल गुप्तवंश के साथ ही आरम्भ होता है जिसके प्रवर्तक चन्द्रगुप्त प्रथम (320 ई.) थे। समुद्रगुप्त का नामोल्लेख कवि के रूप में पहले ही हो चुका है। समुद्रगुप्त के अनन्तर चन्द्रगुप्त द्वितीय भी साहित्यिक रुचि के पुरुष थे। कालिदास ने अपनी कृतियों का निर्माण कब किया, यह कहना यद्यपि कठिन है फिर भी बहुत सारे समालोचक विद्वान् उनको गुप्त कालीन ही स्वीकार करते हैं।

## कालिदास

कविकुल गुरु महाकवि कालिदास ने तीन नाटकों अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीयम् तथा मालविकाग्निमित्रम् के अतिरिक्त, रघुवंश, कुमारसम्भव, ऋतुसंहार और मेघदूत की रचना की है। उसके समय और व्यक्तित्व के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी पता नहीं है। फिर भी कालिदास ने अपनी कृतियों में अपने समय के सारे भारतवर्ष का और इसके विभागों का नामोल्लेख किया है। उनका महाकाव्य रघुवंश अठारह सर्गों में लिखा हुआ महाकाव्य है। इसमें रघुकुल का वर्णन है। कथा और काव्यों में कालिदास ऐसी परमकोटि को प्राप्त हुए हैं जो उनसे पहले या बाद में और कोई प्राप्त नहीं कर सका है। रघुवंश का विषय विविध और व्यापक है जिससे कालिदास को अपनी कल्पना शक्ति प्रदर्शन करने का पूर्ण सुअवसर प्राप्त हुआ है। रघुवंश सूत्रबद्ध काव्य की अपेक्षा चित्रों की एक तेजोराशि है। कालिदास सुघटित वर्णनों के लिए आख्यान विषयक अभिरुचि का हनन कभी नहीं करते हैं। हृदयंगमता और अभिरुचि के लिए उनकी अपनी निश्चितता है। सचमुच कालिदास में भी अन्य संस्कृत कवियों की तरह, अपने पात्रों की 'सर्वथाभद्र' पात्रों के रूप में चित्रण करने की प्रवृत्ति विद्यमान है। फिर भी यह मानना होगा कि इन आदर्श पात्रों का अपना व्यक्तित्व है। रघुवंश में कई विषय अद्भुत कवि कल्पनाश्रित रीति और संगीत की शक्ति से आपस में ग्रथित हैं। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि कुछ अपवादों को छोड़कर कालिदास को शब्दाडम्बर के कृत्रिम प्रयोग में अभिरुचि नहीं है। उसकी कृतियाँ मानव भावनाओं से परिपूर्ण हैं।

कालिदास की एक और कृति कुमारसम्भव महाकाव्य है जिसके आठ सर्ग हैं। रचना सम्पूर्ण नहीं है जिसका कोई ज्ञात कारण नहीं है। इसके आगे के सर्ग भी मिलते हैं परन्तु वे किसी अज्ञात के द्वारा लिखे गये समझ जाते हैं। काव्य मुख्य कथा से आरम्भ होता है। प्रथम सर्ग में हिमालय का वर्णन बहुत ही रमणीय है।

यह काव्य प्रचुर वैचित्र्य कल्पना की उज्वलता तथा भावों की अभिव्यक्ति के कारण आधुनिक अभिरुचि के अनुकूल है। कुमारसम्भव में एक ओर वसन्त ऋतु की रमणीयता तथा सभोगश्रृंगार का हर्षोल्लास है तो दूसरी ओर प्रियतमा की मृत्यु से छाया हुआ घोर विषाद।

आनन्दवर्धनाचार्य का कथन है कि कई आलोचकों ने देवताओं के रतिभाव के वर्णनों की आलोचना की है। यह विषय आधुनिक अभिरुचि के अनुकूल प्रतीत नहीं होता है क्योंकि मानवीय भावनाओं को आलौकिक रूप दिया गया है। इस कृति के आदर्श पर वाल्मीकि का प्रभाव पड़ा है। तारकासुर का वर्णन रावण के वर्णन से प्रभावित है।

यह काव्य अधूरा क्यों रहा यह समस्या बहुत ही उलझी हुई है। हो सकता है कि यह हस्तलिखित प्रति में नष्ट हो गया हो या सम्भव है कि कवि ने इस काव्य को अपने समकालीन पण्डितों की आलोचना के कारण अधूरा ही छोड़ दिया हो। चूँकि रघुवंश बाद की रचना है, यह कहना युक्तिसंगत नहीं होगा कि कवि की मृत्यु के कारण यह काव्य पूरा नहीं हो सका, निःसंदेह कवि द्वितीय भाग पूरा करने की प्रतिज्ञा पहले भाग में कर चुके हैं।

### महाकवि कालिदास के विचार

महाकवि कालिदास की रचनाओं में तत्कालीन वेदादिशास्त्र प्रतिपादित-धर्म के सिद्धान्त मिलते हैं। वह चार वर्णों और चार आश्रमों के पक्षपाती हैं। उन्होंने आदर्श ब्राह्मण और आदर्श क्षत्रिय का वर्णन किया है। जीवन के चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—में उनका पूर्ण विश्वास है। यद्यपि कालिदास ने प्रेम संबंधी चित्रों को चित्रित किया है परन्तु वे इंद्रियपरक नहीं हैं। शास्त्रों के अनुसार पुत्र प्राप्ति आवश्यक है। कालिदास ने रघुवंश के आरम्भ में स्पष्ट कहा है रघुवंशी पुत्र प्राप्ति के लिए गृहस्थ जीवन को स्वीकार करते थे।

ऐसा ज्ञात होता है कि कालिदास ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों देवों की पारमार्थिक एकता का तथा जगत्-प्रकृति के बारे में सांख्य और योगदर्शन के सिद्धान्तों को मानने वाले हैं। उन्होंने कई बार तीन गुणों का उल्लेख किया है तथा कुछ योगासनों का भी निरूपण किया है। प्रो. कीथ का कथन है कि कालिदास में मानव हृदय के द्वंद्वों का कोई समाधान सम्भव नहीं है। उनके अनुसार कालिदास ब्राह्मण धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस कारण से कई पाश्चात्य विद्वान् कालिदास की रचनाओं की आलोचना करते हैं किन्तु भारतीय सहृदय को कालिदास की कृतियाँ अत्यधिक प्रभावित करती हैं जिनमें कर्म तथा पुनर्जन्म सिद्धान्तों में पूर्ण विश्वास प्रकट किया गया है।

### महाकवि कालिदास की शैली

कविकुल गुरु कालिदास संस्कृत साहित्य के एक स्वर से सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। निर्दोषता और लालित्य में वे अश्वघोष से भी उत्कृष्ट हैं और उत्तरकालीन कवियों की अपरिमितता से मुक्त हैं। दण्डी का कथन है कि “कालिदास ने वैदर्भी रीति को अपनाया है तथा ध्वनि साम्य का ध्यान रखते हुए शब्दों का प्रयोग साधारण अर्थ में किया है।” कालिदास

सर्वसाधारणजनों के कवि हैं। यद्यपि उन्होंने भूपालों और देवों के बारे में लिखा है फिर भी जनसाधारण के लिए भी लिखा है। राजाओं का चित्रण शूरवीरों के रूप में किया गया है। उनका जीवन जन सामान्य के लिए एक आदर्श है तथा वे देश की समृद्धि के लिए काम करते हैं। पुरोहितों का चित्रण भी महत्वास्पद है। वे अपने नृपों और उनके अनुयायियों को हितावह उपदेश देते हैं। देवों का वर्णन करते समय कालिदास ने उनको मानवीय रंग से रंजित किया है।

कालिदास के लिए संसार पाप और व्यथा का स्थान नहीं है। यहाँ सौन्दर्य तथा हर्ष विराजमान है। उन्होंने प्रकृति के परम आनन्ददायी रूप का वर्णन किया है। सौन्दर्य की उनकी अपनी कल्पनाएं हैं। कालिदास के अनुसार सौन्दर्य वर्णनातीत है, केवल हृदय से ही उसका अनुभव हो सकता है।

कालिदास की प्रशंसा पूर्वीय तथा पश्चिमीय विद्वानों ने समान रूप से की है। प्राकृतिक सौन्दर्य का मानवीय भावनाओं के साथ एकीकरण करने के लिए कालिदास प्रशंसा के पात्र हैं। उसने ऐसे अनुपम काव्य का निर्माण किया है जिसमें मानव-हितवाद, अद्भुत-कल्पनावाद तथा प्रकृति प्रेम का चित्रण है। काव्य के प्रधान अंग शब्द रचना, कल्पना और ध्वनि आदि सभी उनकी रचनाओं में रमणीय रूप से विद्यमान हैं। कालिदास में श्रुतिकटु तथा असंस्कृत कुछ भी नहीं पाया जाता। उनके काव्य की एक और विशेषता यह है कि वे वाच्य की अपेक्षा ध्वनि का अधिक प्रयोग करते हैं। कुमारसम्भव के निम्नलिखित पद्य से उनकी व्यंजनाशक्ति का पता चलता है। जिसमें पार्वती संभ्रान्त स्थिति में दिखाई गई है—

**एवं वादिनी देवर्षीं पार्श्वे पितुरधोमुखी।**

**लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती॥ (कुमारसंभव 6-84)**

कई आलोचकों के अनुसार निम्नलिखित पद्य में 'राजा' शब्द व्यंग्यार्थ से परिपूर्ण है—

**वाच्यस्त्वया मद्बचनात्स राजा वही विशुद्धामपि यत्समक्षम**

**मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य तत्किं सदृशं कुलस्य॥**

कालिदास ने उपमाओं की विषय सामग्री उपयुक्त विषयानुकूल वातावरण से ही ली है। अतएव वे उपमा सम्राट कहाए तथा परम्परा उपमाओं के लिए कालिदास का ही नैपुण्य स्वीकारती है—उपमा कालिदासस्य।

उनकी उपमाएं असाधारण एवं मनोरम होती हैं। उनमें लिंग साम्य, भावसाम्य और रमणीयता का अद्भुत समन्वय है। वे सर्वांगीण और व्यापक हैं। उनमें काव्य शास्त्र, दर्शन, व्याकरण और वेदों में प्राप्त भावों और सिद्धान्तों का सुन्दर प्रतिपादन है।

निम्नलिखित पद्य में कालिदास की उपमा का सौन्दर्य अपूर्व है, जिसके आधार पर उनकी 'दीपशिखा' उपाधि दी गई थी—

**संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिम्बरा सा,**

**नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विषर्णभावं स स भूमिपालः।**

कालिदास अपनी उपमाओं के लिए ही नहीं अर्थान्तरन्यास के लिए भी प्रसिद्ध हैं। कहा भी जाता है 'अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते।' इनका विषय वैविध्य, वैदुष्य, कलात्मक प्रवीणता और मनोज्ञता दृष्टव्य है। कभी-कभी उनके रूपक निःसंदेह व्याकरण आदि की दृष्टि से असहज रहते हैं। कालिदास न केवल कल्पना में अपितु पर्वतों, नदियों तथा मानवविचारों के सुस्पष्ट चित्रण में भी उत्कृष्ट हैं। उनमें वैचित्र्य और वैविध्य दोनों हैं। वे अत्यन्त सजीव और स्वाभाविक हैं।

कालिदास छन्दों के प्रयोग में बड़े निपुण हैं और नाना छन्दों के प्रयोग में पूर्ण कौशल दिखाते हैं। लौकिक संस्कृत के प्रायः सभी आवश्यक छन्दों का उन्होंने प्रयोग किया है। उन्हें छोटे छन्द अधिक प्रिय हैं, उनमें भी उपजाति अनुष्टुप् सर्वाधिक प्रिय छन्द हैं, बड़े छन्दों का प्रायः सर्गान्त में प्रयोग किया है। उनके समान के कवि के आज तक प्राप्त न होने से अनामिका अनामिका ही रह गयी—“प्रद्यापि तनुल्यक्वेरभावादानामिका सार्थवती बभूव।”

**कालिदासोत्तर कवि**

**अश्वघोष**

महाकवि अश्वघोष भी संस्कृत के महान् कवियों में से एक हैं। कई विद्वान् अश्वघोष का समय कालिदास से पूर्व मानते हैं। वे एक महाकवि, नाटककार तथा दार्शनिक थे किन्तु उनकी ख्याति उनके काव्य के लिए अधिक है। पचास साल पूर्व तक अश्वघोष का केवल नाम मात्र ही ज्ञात था किन्तु अब उनकी कृतियां प्रकाशित हुई हैं। उनके निजी जीवन के बारे में बहुत कम ज्ञान है। इतना तो हम जानते हैं कि वे बौद्ध भिक्षु थे और उनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। यद्यपि उनकी कृतियां

पाण्डित्य का प्रदर्शन करती हैं किन्तु वे अपने आपको संस्कृत काव्य में प्रवीण स्थापित करते हैं। सम्भव है कि वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए हों और बाद में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली हो। चीनी परम्परा के अनुसार वे कनिष्क के समकालीन थे अतः उनका समय प्रथम शताब्दी ई. माना जाता है। यद्यपि वे बौद्ध मत के हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायी थे किन्तु उन्होंने बुद्ध के व्यक्तिगत प्रेम तथा भक्ति पर बल दिया है जिसने बाद में महायान भक्ति के लिए मार्ग प्रदर्शन किया। उनके पाण्डित्य ने उनके काव्य को समृद्ध कर दिया है किन्तु उनकी कृति की शैली सादगी से ओतप्रोत है अतः वह केवल मात्र साहित्यिक होने नहीं पायी है।

उत्तरकालीन बौद्ध धर्म में अश्वघोष को एक गद्यकाव्य लेखक माना गया है और कई धर्म ग्रन्थों का रचयिता भी। ऐसी संदिग्ध कृतियों में महायान-श्रद्धोत्पाद-शास्त्र का नाम लिया जाता है। दूसरी ऐसी ही कृति वज्रसूचि है। एवमेव गाण्डिव-स्तोत्रगाथा का भी उल्लेख किया जाता है।

यहाँ पर हमारा प्रयोजन अश्वघोष के दो महाकाव्यों-बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द से है। बुद्धचरित की एक हस्तलिखित प्रति मिलती है जिसमें तेरह सर्ग और चौदहवें सर्ग के केवल चार पद्य हैं। इस ग्रन्थ का अनुवाद चीनी भाषा में (414-421 ई. में) हो चुका है और इत्सिंग ने इसे अश्वघोष की रचना बतलाया है। केवल चीनी अनुवाद ही नहीं तिब्बती अनुवाद भी हमें बतलाता है कि असली बुद्धचरित में 28 सर्ग थे। कहानी बुद्ध निर्माण तक पूर्ण है। बुद्धचरित यथार्थतः ऐसे कवि की रचना है जो बुद्ध और उसके सिद्धान्तों का परमभक्त है। अश्वघोष अपनी धार्मिक भावनाओं को काव्यात्मक स्वयंप्रवृत्त अन्तर्वेग से विलीन करने में सफल हुए हैं। सर्वार्थसिद्धि की नगर की गलियों व बाजारों के मध्य यात्रा, कमनीय कामिनियों का उसे देखने के लिए इकट्ठा होना, बीमारी जरा तथा मृत्यु का चित्रण यह सब प्रशंसा के योग्य हैं। सिद्धार्थ का मकरध्वज के साथ संग्राम-चित्रण महाकाव्य के एक उत्पादन-तत्त्व संग्राम-चित्रण को पूर्ण करता है। यह कृति केवल बौद्ध मत के सिद्धान्तों का चित्रण मात्र अथवा घटनाओं का वर्णन मात्र ही नहीं है अपितु बौद्ध आख्यान का वास्तविक काव्यात्मक निरूपण है।

अठारह सर्गों में सुरक्षित सौन्दरनन्द में ऐतिहासिक महाकाव्य की पद्धति का अनुसरण करते हुए बुद्ध के सौतेले भाई नन्द और सुन्दरी की कथा दी गई है। और बतलाया गया है कि बुद्ध ने नन्द को, जो सुन्दरी के प्रेम में डूबा हुआ था, किस प्रकार अपने सम्प्रदाय का अनुगामी बनाया। इसकी कथा महावग्ग तथा निदान कथा से ली गई है। उनमें जो विषय दिया गया है यह काव्य की रचना में बहुत कम सहायक है किन्तु अश्वघोष ने अपने कवित्व से उस न्यून सामग्री को वास्तविक काव्य में परिणत कर दिया है। इसमें अत्यधिक आख्यानात्मक आकर्षण है। अहंकार के अवगुणों की निन्दा की गई है। यहां पर निःसंदेह, उपदेशक अश्वघोष कवि अश्वघोष से उत्कृष्ट हैं। किन्तु इसके काव्यात्मक तथा धार्मिक प्रवृत्ति के द्वन्द्व के मध्य ही उनके काव्य की वास्तविकता झलकती है। जो कुछ वे कहना चाहते हैं उसमें महत्त्वपूर्ण विश्वास रखने से अश्वघोष सहज और सरल हो पाये हैं और उनकी कृति में धाराप्रवाहता आ गई है।

यद्यपि अश्वघोष के काव्य में उत्तरकालीन काव्य की परिष्कृतता का अभाव है किन्तु इसकी पूर्ति भावनाओं की नवीनता, शब्द रचना साधारण तथा सरल निष्ठा की उदारता से हुई है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि अश्वघोष अपने समय के ब्राह्मण तथा बौद्ध पाण्डित्य से अनभिज्ञ थे। उससे अधिक वह काव्यकला के प्रदर्शन में कुशल थे। वे स्वयं घोषित करते हैं कि वे जनसाधारण के लिए लिख रहे हैं न केवल विद्वत्सभा के लिए, शान्ति प्राप्ति के लिए न कि काव्यकला प्रदर्शन के लिए। वे स्वभाव से कवि हैं तथा प्रशिक्षण से अत्यधिक शिष्ट व संस्कृत हैं किन्तु निष्ठा से धार्मिक भक्त हैं। इस तरह की संहति से उनके भावों को सत्यता व अकृत्रिमता प्राप्त हुई है जो कि बाद की कविता में दुर्लभ है। अतः उनके आख्यान कभी नीरस नहीं हैं, घटनाओं का चयन असम्बद्ध नहीं है, तथा शब्द रचना व भाषा परिश्रम साध्य नहीं है। उनकी कविता परिबद्ध संगीत से स्फुटित हो उठी है चाहे उसमें सुव्यवस्थित स्वरमाधुर्य न हो। उनकी विषय सामग्री तथा काव्यात्मक गुण अत्यधिक प्रभाव डालने वाले हैं क्योंकि वे रीति तथा कला प्रदर्शन पर बल नहीं देते। निःसन्देह अश्वघोष का अनुसरण उत्तरकालीन कवियों ने नहीं किया।

**तुचोवोऽमश्वघोषो यो  
बौद्धदर्शनमर्मधुक्  
कवितावनितासारः  
सोऽसंगोऽपि ससोदुक्॥**

अश्वघोष वैदर्भी रीति के कवि हैं। वे रामायण, महाभारत और कालिदास की शैली से अधिक प्रभावित हैं, अतः उनकी शैली में प्रसाद और माधुर्य का बाहुल्य है। उनका दर्शनशास्त्र और व्याकरण पर असाधारण अधिकार हैं, अतः वे दर्शनों के सूक्ष्म तत्त्वों की अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा में रखने में समर्थ हैं। व्याकरण के पाण्डित्य के कारण वे कहीं-कहीं पर

शब्द-चित्रों का चित्र सा प्रस्तुत करते हैं। कुछ स्थलों पर ऐसे क्रियापदों का प्रयोग है जिनसे एक-दो नहीं, चार-चार अर्थ निकलते हैं (सौन्दरनन्द-1-15) उन्होंने अनुप्रास और यमक के अतिरिक्त उपमा और अर्थान्तरन्यास अलंकारों का बहुत सुन्दरता से प्रयोग किया है। संयोग और विप्रलम्भ श्रृंगार तथा करुण रस का मनोहर प्रतिपादन है।

### भाषा-सौष्टव

भावों के अनुसार भाषा में उतार-चढ़ाव तथा संतुलित भाषा का प्रयोग अश्वघोष की विशेषता है। इसी भाषा-सौष्टव के कारण कहीं-कहीं लयात्मकता भी दृष्टिगोचर होती है बुद्ध के उपदेश से प्रतिबुद्ध नन्द की अवस्था एक विरक्त भिक्षु की सी है। क्या ही सुन्दर भाषा में उसका वर्णन है—

न मे प्रियं किंचन नाप्रियं मे  
न मेऽनुरोधोऽस्ति कुतो विरोधः।  
तयोरभावात् सुखितोऽस्मि सद्यो  
हिमातपाभ्यामिव विप्रमुक्तः॥

अश्वघोष ने गूढ़ से गूढ़ भावों को सरल और सुबोध भाषा में व्यक्त किया है। कहीं-कहीं कूट शैली का भी आश्रय लिया गया है।

### भावाभिव्यक्ति

अश्वघोष ने कहीं-कहीं अत्यन्त मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति की है। शुद्धोधन की आत्म-शुद्धि का सुन्दर वर्णन है कि उन्होंने तीर्थ-जल से शरीर को और गुणरूपी जल से मन को पवित्र किया। उन्होंने वेदोक्त सोमरस का पान किया और हार्दिक सुख की रक्षा की—

“सन्नौ शरीरं पवितुं मनश्च  
तीर्थम्बुभिश्चैव गुणाम्बुभिश्च।  
वेदोपदिष्टं सममात्मजं च  
सोमं पपौ शान्तिसुखं च हार्दम्॥”

(बुद्ध 2-37)

### -रस परिपाक

अश्वघोष ने श्रृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन किया है। संभोग श्रृंगार का सुन्दर उदाहरण नन्द सुन्दरी के अनुराग वर्णन में मिलता है। नन्द और सुन्दरी एक दूसरे पर किनर-किनरी के तुल्य अनुरक्त थे और वे रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर विषय-भोग में लिप्त रहते थे।

“भावानुरक्तौ गिरिनिर्झरस्थो  
तौ किंनरीकिंपुरुषावोभौ।  
चिक्रीडतुश्चाभि विरेजतुश्च  
रूपाश्रियाऽन्योन्यमिवाक्षिपन्तौ॥”

(सौन्दर. 4-10)

### वर्णन वैचित्र्य

अश्वघोष ने आश्रम, नदी, वन, वृक्षादि प्राकृतिक वस्तुओं, बुद्ध-मार युद्ध, श्रृंगार, करुण और वीर आदि रसों और स्वर्ग-निर्वाण आदि का मार्मिक वर्णन अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। वर्णनों में यथार्थता, सजीवता, स्वाभाविकता और चित्रात्मकता है।

अश्वघोष के प्रिय छन्द अनुष्टुप् और उपजाति है। बुद्धचरित और सौन्दरनन्द में अधिकांश सर्गों में उपजाति का प्रयोग हुआ है। उसके बाद अनुष्टुप् का प्रयोग हुआ है। सर्गान्त श्लोकों में वंशस्थ, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, और शार्दूल विक्रीडित के प्रयोग हैं।

अश्वघोष अनेक विषयों के ज्ञाता थे। उन्होंने व्याकरण, दर्शन, पुराण, राजनीति, नीतिशास्त्र, आर्युवेद कामशास्त्र और बौद्ध साहित्य का गंभीर अध्ययन, मनन और चिन्तन किया था।

उदार आशय होते हुए भी कालिदास अपने काव्य में किसी एक निश्चित लक्ष्य को लेकर नहीं चलते हैं किन्तु अश्वघोष की कविता में कोई एक निश्चित लक्ष्य उपलब्ध होता है। सौन्दरनन्द की अन्तिम पंक्तियों में वे कहते हैं, इस कृति का विषय मोक्ष प्राप्ति है, शान्ति है न कि लौकिक सुख प्राप्ति। इसी लक्ष्य में इसका आरम्भ किया गया है। मोक्ष साधनों के अतिरिक्त

जिन विषयों का समावेश किया गया है वे कविता के साधन हैं, ताकि शब्द में सम्मिश्रित कड़वी औषधि की तरह पान करते हुए यह कृति हृदय को अभिमत प्रतीत हो। कालिदास में इस तरह के लक्ष्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने जीवन के उज्ज्वल पक्ष को अपनाया है किन्तु अश्वघोष जीवन के अनुज्ज्वल पक्ष पर बल देते हैं। इसका कारण यही है कि दोनों भिन्न-भिन्न धार्मिक सिद्धान्तों पर विश्वास रखते थे।

## भारवि

महाकवि भारवि के जीवन के विषय में विश्वस्त सूत्र से कुछ भी ज्ञात नहीं है। दण्डी द्वारा रचित अवनति-सुन्दरी कथा के अनुसार भारवि दण्डिन् के प्रपितामह थे तथा पुलकेशिन् द्वितीय के छोटे भाई (615 ई. के लगभग) के सभा पण्डित थे। अवनति सुन्दरी कथा में यह भी उल्लेख है कि भारवि सिंह विष्णु के आदि कवि थे सिंह विष्णु का शासन काल 575-600 ई. के मध्य है। सिंह विष्णु से मिलने के समय भारवि 20 वर्ष के थे अतः भारवि का जन्म समय 560 ई. के लगभग सिद्ध होता है। बाह्य साक्ष्य से ज्ञात होता है कि वह 634 ई. में पैदा हुए थे। काशिका-वृत्ति में इनकी रचना में से उदाहरण दिए गए हैं। वे कालिदास से प्रभावित हैं और उन्होंने माघ के ऊपर अपना प्रभाव डाला है। ऐहोल शिलालेख के (634 ई.) लेखक रविकीर्ति ने अपने आपको कालिदास और भारवि का समकक्ष कवि बताया है अतः भारवि की अपर सीमा 634 ई. है। अतः हम भारवि का समय 500 ई. से 550 ई. मान सकते हैं। भारवि अपने अर्थ गौरव के लिए लोक प्रसिद्ध हैं “भारवरेथगौरवम्।”

भारवि का वैदुष्य व्यापक है। उन्होंने जीवन की ऊंच-नीच सभी अवस्थाओं का वैयक्तिक अनुभव प्राप्त किया था। अतः उनके सैकड़ों सुभाषितों में वेद, दर्शन, नीति, राजनीति, पुराण, ज्योतिष, कामशास्त्र, कृषि, काव्य-शास्त्र, अलंकारशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र आदि का अगाध पाण्डित्य मिलता है। भारवि का नीतिशास्त्रीय ज्ञान बहुत व्यापक था जैसे—“असाधुयोग हि जयान्तरायाः प्रमाथिनीनां विपदां पदानि”।

उनके राजनीति विषयक ज्ञान का भी कोई अन्त नहीं था—“व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः”।

भारवि के किरातार्जुनीय का विषय महाभारत के वनपर्व से लिया गया है, जब पाण्डव द्रौपदी सहित वनवास की अवस्था में रहते थे। अर्जुन से कहा जाता है कि वह हिमालय पर जाकर कठिन तपस्या द्वारा देवों को प्रसन्न करके उनसे दिव्यास्त्र प्राप्त करें। सीधी-सादी कहानी अठारह सर्गों में उपलब्ध है। इसका कारण भारवि के कृत्रिम वर्णनों की प्रचुरता है। भारवि निबन्ध अथवा रीति वैलक्षण्य के अनुयायी हैं। आदि से अन्त तक उनका काव्य साहसिक व वीर उपादानों से युक्त है। युधिष्ठिर शान्तिप्रिय है तथा भीमसेन उद्धृत शूरवीर। वेदव्यास दोनों के बीच मध्यवर्ती होकर परामर्श देते हैं।

भारवि की शैली उदात्त एवं भव्य है। शैली की सादगी उनके विषयों के उपयुक्त नहीं है। विचारों की गम्भीरता तथा भाषा के गौरव के लिए भारवि की प्रशंसा की गई है किन्तु उसकी शब्दरचना अस्पष्ट नहीं है। जब युधिष्ठिर भीम से कहता है तो प्रतीत होता है कि भारवि अपनी ही शैली का बखान कर रहे हैं—

**स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।  
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं यवचित्॥**

‘पदों ने स्फुटता छोड़ी नहीं है, अर्थगौरव को अस्वीकार नहीं किया गया है। प्रतिवचन की अपनी अर्थता रचित की गई है (अर्थात् कहीं भी पुनरुक्ति नहीं है)। फिर भी अर्थ की एकता अथवा वचन-सामर्थ्य को तिलाञ्जलि नहीं दी गई है।’

भारवि उपदेश नहीं देते हैं। वे वीरता का प्रवचन करते हैं किन्तु आदेश के रूप में नहीं। किरातार्जुनीय के आरम्भ में दुर्योधन के राज्य का वर्णन किया गया है। इससे भारवि की राज्य प्रपंचो की जानकारी की सूक्ष्मता का पता चलता है। भारवि वैराग्य तथा संन्यास की निन्दा करते हैं। वे वीर चरित के द्वारा उपदेश देते हैं। भारवि ने संसार का रूप सौन्दर्य देखा है। भारवि का धर्म कविता में स्पष्ट है, अर्थात् उनका धर्म पराक्रम की आराधना का धर्म है।

भारवि ने भाषा, भाव, काव्य सौन्दर्य, रस परिपाक, वर्णन वैचित्र्य, अलंकार प्रयोग, विविध छन्दो-योजना और शास्त्रीय पाण्डित्य का सुन्दर प्रदर्शन किया है। उनकी भाषा में प्रौढ़ता, ओज और प्रवाह है। उनकी शब्द योजना भावानुकूल है।

भारवि ने मानवी प्राकृति का सूक्ष्मरूप से अध्ययन किया है तथा वे मानव व्यवहार के सफल प्रदर्शक हैं। उनका चरित्र-चित्रण उत्कृष्ट है। द्रौपदी तथा भीम के वक्तव्य इसके साक्ष्य हैं। युधिष्ठिर, जो मूल कथानक में सुपराजेय है इस काव्य में शूरवीर दिखाया गया है। भीम जो मूल कथानक में साहिसी शूरवीर है, यहां पर राजनीति के विषय में एक सुन्दर भाषण देता है। जहां तक भाषा की सामग्री का प्रश्न है वह प्राचीन ग्रन्थों से ली गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि भीम की द्रौपदी के प्रति प्रबल उक्ति के द्वारा, भारवि अपने देशवासियों को विदेशी आक्रमणकारियों से लड़ने के लिए प्रवृत्त होने का प्रोत्साहन देते हैं। अतः भारवि को मानव प्रकृति का तथा शूरवीरता का कवि कहा जा सकता है। भारवि ने रमणीयता की अपेक्षा साहसिकता

पर अधिक बल दिया है। अलंकारों के प्रयोग में उनका नैपुण्य दर्शनीय है। 15 वें सर्ग में चित्रालंकारों की बहुरंगी छटा है। कहीं पदादि यमक हैं, कहीं गोमूत्रिका बध है कहीं सर्वतोभद्र, कहीं एक ही श्लोक उल्टा सीधा एक सा है, कहीं पूर्वार्ध और उत्तरार्ध एक सा है, कहीं द्वयर्थक, त्र्यर्थक तो कहीं चार अर्थ वाले श्लोक हैं।

### **न नोननुनो नुनोनो नाना नानानना ननु। नुनोऽनुनो ननुनोनो नानेन नुनुननुत्॥**

ऐसे प्रयोगों के होने पर भी भारवि की शैली में लम्बे-लम्बे समास नहीं हैं। सबको मिला-जुला कर देखा जाय तो इसकी शैली में क्लिष्टता का दोष नहीं है। भारवि निपुण वैयाकरण थे। वे अप्रसिद्ध नियमों के प्रयोग में अपने व्याकरण ज्ञान का परिचय देते हैं। विभिन्न छन्दों का प्रयोग करने में वे पूर्ण सिद्ध हैं। कभी-कभी उन्होंने कठिन और अप्रयुक्त छन्दों का भी प्रयोग किया है। उनका अर्थ गौरव, अर्थ गाम्भीर्य एवं अर्थ की सार्वकालिकता सार्वदेशिकता एवं सार्वजनीत्व में है। पद-पद पर अर्थ गौरव उनके नैपुण्य और गम्भीर चिन्तन का परिचायक है। जिस प्रकार उनके अर्थ उनके काल में स्वकार्य थे, उसी प्रकार आज भी है और भविष्य में भी रहेंगे।

### **भट्टि**

महाकवि भट्टि भी एक प्रसिद्ध कवि हैं। वे व्याकरण और काव्य शास्त्र के महान् पण्डित थे। इनके काव्य का नाम 'रावणवध' है जिसको साधारणतया भट्टिकाव्य कहते हैं। इसके 22 सर्गों में लंका विजय और राम के अभिषेक तक की कथा वर्णित है। कोई-कोई कहते हैं कि भट्टि तथा वत्सभट्टि दोनों एक ही व्यक्ति के नाम हैं। अन्य मत के अनुसार भर्तृहरि भी भट्टि हैं। किन्तु यह सिद्धान्त माननीय नहीं हो सकता। अधिक सम्भावना यही है कि भट्टि कोई पृथक ही व्यक्ति है। भट्टि को हम 600 ई. से 700 ई. तक के समय में रख सकते हैं।

भारतीय लेखक भट्टि-काव्य को महाकाव्य मानते हैं। इस काव्य में 22 सर्ग हैं। इसमें रामायण की कथा भी वर्णित है और व्याकरण के नियमों के उदाहरण भी दिये गये हैं। भट्टि का कहना है कि यह रचना व्याकरण का अभ्यास करने वालों के लिए एक दीपक के समान है। हम भट्टि के इस उद्देश्य को एक ओर करके काव्य के रूप में भी पढ़ सकते हैं। किन्तु उनकी यह चेतावनी सत्य ही है कि पण्डितों के लिए वह काव्य हर्ष का विषय है और अपण्डितों की समझ से बाहर है। काव्यात्मक अभिरुचि इस स्थिति को न्याय नहीं समझती है। किन्तु हमें यह मानना होगा कि यह काव्य, संसार के साहित्य में अपूर्व कृति है जो व्याकरण के नियमों व रूपों के विवरण के लक्ष्य को रख कर लिखा गया है।

भट्टि अपने वर्णनों में तथा वक्तव्य में विविधता लाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु उनकी मौलिकता नगण्य है तथा श्रमसाध्य भाषा का प्रयोग काव्य रचना का बाधक बन गया है। कवि को पद रचना में स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है क्योंकि वे उसी प्रकार की पद रचना का प्रयोग करते हैं जिससे व्याकरण के नियम व रूपों का प्रयोग हो। ऐसे विषय को लक्ष्य में रखकर ही यदि काव्य लिखा जाय तो मनुष्य की भावनाएं तथा विचार गौण हो जाते हैं फिर भी भट्टि को यह श्रेय देना चाहिए कि उसके आख्यान दीर्घ नहीं है, अप्रासंगिक विषयों को भरमार नहीं है तथा भाषा की जटिलता नहीं है। कवित्व और भाव पक्ष की न्यूनता नहीं है। उसमें सरसता, सरलता और सहृदयता के साथ-साथ पाण्डित्य और चित्रालंकार प्रयोग भी है। भट्टि में वर्ण की अपूर्व क्षमता है। उनके सरस और सुन्दर भावों वाले श्लोक सुन्दर हैं। कवि का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी दर्शनीय है (2/15)। व्याकरण के मनोरम उदाहरण भट्टि की प्रौढ़ता के परिचायक हैं। (1/3, 13/27, 21/4)

### **माघ**

महाकाव्यों के इतिहास में माघ का स्थान बड़ा उच्च है। माघ के पिता का नाम दत्तकसर्वाश्रय और पितामह का सुप्रभदेव था जो राजा वर्मलात का मंत्री था। वसन्तगढ़ से 625 ई. का एक शिलालेख मिला है जिसमें वर्मलात का नाम आया है। इस प्रमाण के आधार पर हम माघ का काल सातवीं शताब्दी के उत्तर में कहीं रख सकते हैं। उन्होंने काशिका के भाष्य लिखने वाले न्यासकार का उल्लेख किया है। माघ ने अपने महाकाव्य के कथानक का विषय महाभारत से लिया है। भारवि ने शिव की स्तुति की है तथा माघ ने विष्णु की। कालिदास आदि कवियों के ग्रन्थों के समान माघ का ग्रन्थ 'शिशपालवध' महाकाव्य में गिना जाता है जिसे माघकाव्य भी कहते हैं। कई बातों में वह अपने पुरस्सर भारवि से भी बढ़ गए हैं।

प्राचीन भारतीय उक्ति के अनुसार "कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थ गौरव तथा दण्डी का पदलालित्य प्रशंसनीय हैं किन्तु माघ में ये तीनों गुण विद्यमान हैं।" "माघे सन्ति त्रयो गुणः।" माघ का वैदुष्य एकांगी न होकर सर्वांगीण हैं उसमें कालिदास के तुल्य सुन्दर उपमा का प्रयोग ही नहीं है, अपितु भारवि के तुल्य अर्थगौरव और दंडी के तुल्य पद-लालित्य भी है। माघ का यह दृष्टिकोण रहा है कि उनकी कविता में उनके समय तक प्रचलित सभी गुण आ जायें जिससे किसी भी दृष्टि



से देखने पर उनका काव्य एकांगी या न्यून न हो। इसीलिए एक ओर उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है तो दूसरी ओर अर्थान्तरन्यासों की छटा दिखाई देती है। एक ओर भाषा सौष्ठव है तो दूसरी ओर भाव-गांभीर्य।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि 'माघे सन्ति त्रयोः गुणाः' का यह अर्थ कदापि नहीं होगा कि माघ उपमा प्रयोग में कालिदास से, अर्थगौरव में भारवि से तथा पदलालित्य में दंडी से बढ़कर हैं या उनके समकक्ष हैं। इस उक्ति का अभिप्राय है कि कालिदास आदि में एक-एक गुण मुख्यरूपेण है, पर माघ में ये तीनों गुण समष्टि रूप में विद्यमान हैं। इसी कारण यह कथन युक्तिसंगत है कि—

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।  
दण्डिन पदलालित्यम् माघे अन्ति त्रयो गुणाः॥''**

माघ का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वह प्रसंगानुसार सरल से सरल और कठिन से कठिन पदावली के प्रयोग से पटु है। अतः कहीं प्रसाद है, कहीं माधुर्य और कहीं ओज। इसी प्रकार कहीं श्रृंगार के विविध भावों का सौन्दर्य हैं, तो कहीं वीर रस का प्रस्फुरण। भाव-सौन्दर्य और प्रसाद तथा माधुर्य का सुन्दर समन्वय एकत्र देखिये।

**“क्षणो-क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः।**

यह भी कहा गया है कि भारवि का आकर्षण तभी तक रहा जब तक माघ का उदय नहीं हुआ था। माघ ने संस्कृत शब्दकोष का पूर्ण उपयोग किया है। माघ को भारवि तथा भट्टि से प्रेरणा प्राप्त हुई है। उसकी भाषा भारवि की जैसी विशद है किन्तु वाक्य रचना कुछ कठिन है। शिशुपालवध में कृष्ण के हाथों शिशुपाल के मारे जाने का वर्णन है। महाभारत में यह कहानी बहुत ही सादी है और कोई काव्यात्मक गुण नहीं है। किन्तु माघ ने इसमें सुघटित वर्णनों से अनेक सुन्दर सुधार कर दिये हैं तथा इसे एक महाकाव्य में परिणत कर दिया है। पहले दो सर्गों में कुछ गति है, तीसरे सर्ग से ग्याहरवें सर्ग तक सेना, क्रीड़ा, कामिनियों का प्रेमोल्लास, ऋतु आदि का वर्णन है।

माघ ने अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है जो उन्होंने कई स्रोतों से प्राप्त किया है। माघ द्वारा यमक अलंकार का प्रयोग पाण्डित्यपूर्ण हुआ है। उन्हें व्याकरण तथा शब्दकोष पर पूर्ण अधिकार है। माघ राजनीतिक ज्ञान का भी प्रदर्शन करते हैं। माघ और भारवि में प्रकृति की विविधता तथा रागरक्तिमा है किन्तु जीवन नहीं है। वे प्रकृति के सौन्दर्य से परिचित है किन्तु उसकी अनुभूति से नहीं।

माघ काव्य कला और व्याकरण दोनों में समान रूप से पटु है। शिशुपालवध में भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों ही उज्ज्वल हैं। उनके काव्य में वीर और श्रृंगार दोनों ही रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। वे एक साथ ही अर्थालंकारों और चित्रालंकारों के प्रयोग में निपुण है। उनकी भाषा में परिष्कर, लालित्य प्रवाह और असाधारण लाच है। उनकी भाषा में भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता है। माघ के काव्य में प्रसाद माधुर्य और ओज गुणों का संतुलित रूप मिलता है। माघ ने कहीं अपनी अपूर्व कल्पना का परिचय दिया है (उदाहरण शिशु. 4/20), कहीं-कहीं पर भाव गम्भीर्य और शास्त्रीय उपमाओं के कारण दुरुहता आ गई है। वास्तव में भारवि ने जिस रीति समुदाय का प्रवतन किया था वह भट्टि से होते हुए माघ पर परिपूर्ण हुआ।

### श्रीहर्ष

पाँच सर्वोत्कृष्ट महाकाव्यकर्ताओं की परम्परा में अन्तिम महाकवि श्रीहर्ष हैं। कालिदास भारवि तथा माघ स्वयं अपनी विशेषता रखते हैं। श्रीहर्ष भिन्न प्रकार की विशेषता का प्रतिनिधित्व करते हैं। श्रीहर्ष का लिखा हुआ महाकाव्य नैषधीयचरित है। नैषध नल का दूसरा नाम है। इस काव्य में 22 सर्ग हैं और नल तथा दमयन्ती के प्रेम की कहानी इस महाकाव्य का मुख्य विषय है। यह कृति भी अधूरी ही लिखी गयी है। कहा जाता है कि यह महाकाव्य पण्डितों के लिए एक बलवर्धक औषधि है। 'नैषध विद्वदौषधम्'—श्रीहर्ष ने नैषध में अपनी व्युत्पत्ति के प्रदर्शन का जो उपक्रम किया है, उससे पद-पद पर क्लिष्टता और दुरुहता आ गई है। विभिन्न शास्त्रीय सिद्धान्तों के वर्णन, श्लिष्ट और क्लिष्ट प्रयोग तथा बहुलता के प्रकाशन ने काव्य के गागर में सागर भर दिया है। नैषध में विशेष योग्यता प्राप्त करना विविध-शास्त्रज्ञता का परिचायक है। श्रीहर्ष ने नैषध में श्लेषयुक्त प्रयोगों के अतिरिक्त व्याकरण, न्याय, वैशेषिक, सांख्य-योग, वेदान्त आदि के अठिन सिद्धान्तों का भी यत्र-तत्र वर्णन किया है। उन विभिन्न सिद्धान्तों को ठीक से न जानने वाले पाठक के लिये अर्थावगम दुःसाध्य हो जाता है। इसी कारण केवल पाश्चात्य विद्वानों के लिये ही नहीं, भारतीय विद्वानों के लिए भी नैषध टेढ़ी खीर ही है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि नैषध का भाव-पक्ष निर्बल हो गया और कला-पक्ष प्रबल। यह तथ्य एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा।

श्रीहर्ष ने अपवर्गों तृतीया' सूत्र पर व्यंग्य करते हुए कहा कि अपवर्ग (मोक्ष) के लिए तृतीय (स्त्री पुरुष से भिन्न नपुंसक) ही उपयुक्त है—

**“उभयो प्रकृतिः कामे सज्जेदिति मुनेर्मनः।  
अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि॥”**

श्रीहर्ष ने संस्कृत काव्यों के रीतिकाल में द्वयर्थक या त्र्यर्थक पद्य की रचना की एक नई दिशा को जन्म दिया है। पञ्चनली प्रसंग में उन्होंने पांच अर्थों वाले श्लोकों की रचना की है। उनकी कल्पना शक्ति अत्यन्त उर्वर है। उनमें कालिदास की कल्पना, भारवि का अर्थगौरव, माघ का पाण्डित्य सभी एक साथ प्राप्त होते हैं यदि भारवि की ख्याति को माघ ने निष्प्रभ कर दिया तो श्रीहर्ष की काव्य सुषमा ने माघ को भी निरस्त कर दिया। कहा भी गया है कि—

**तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।  
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारवि॥**

कवि होने के अतिरिक्त श्रीहर्ष बड़ा दार्शनिक भी था। अपने खण्डनखण्डखाद्य में इसने न्याय दर्शन का खण्डन करके वेदान्त की उपपत्तिसत्ता सिद्ध की है।

नैषध में दर्शन, विज्ञान तथा अन्य शास्त्रांगों का मिश्रण कविता में किया गया है। इसमें प्रकृति तथा मानव भावों के सुघटित वर्णन हैं। दर्शन का निरूपण उसके काव्य को हानि पहुँचाने की अपेक्षा लाभप्रद सिद्ध हुआ है। यद्यपि कामशास्त्र तथा दर्शन का निरूपण साथ हुआ है फिर भी इन दोनों में कोई विरोध नहीं दिखाई देता है। नैषध महाकाव्य में पदलालित्य (शब्दों अथवा भावों की सुकोमलता) मुख्य गुण है—“नैषधे पदलालित्यम्।”

श्रीहर्ष की भाषा विशद है। उसमें प्रौढ़ता और दुरूह से दुरूह भावों को प्रकट करने की असाधारण क्षमता है। भाषा प्राञ्जल, सरस, प्रवाह युक्त, ध्वन्यात्मक एवं लयात्मक है। रस के अनुकूल भाषा में प्रसाद माधुर्य और ओजगुण का समन्वय है। श्रीहर्ष में भावाभिव्यक्ति की अपूर्व शक्ति है। उनकी कल्पना भावों को मनोरम और सुकुमार बना देती है। यद्यपि उनमें कालिदास जैसा रस परिपाक नहीं है तथापि भाव प्रवणता का प्राचुर्य है। उनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है। उसने सहज रूप में यमक और श्लेष का प्रयोग किया है और वे उसके काव्य में नैसर्गिक लगते हैं। उन्होंने केवल प्रासांगिक विषयों का ही वर्णन किया है। उनके वर्णनों में पाण्डित्य है। 22 सर्गों के बाद आगे क्यों नहीं लिखा, यह ज्ञात नहीं है, किन्तु काव्य स्वाभाविक रूप से नहीं चलता है। प्रशस्त तथा उत्कृष्ट काव्य के सभी आवश्यक तत्त्व इसमें मौजूद हैं तथा यह संगीत और गौरव से परिपूर्ण है। अलंकारों का प्रयोग विचारों में सौन्दर्य लाने वाला है। कथानक की गति कुछ मंद है जिससे काव्य को गौरव प्राप्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष का विश्वास है मानव में न केवल भावनाएं हैं अपितु बुद्धि भी है। श्रीहर्ष में कला और बौद्धिकता का संगम पाया जाता है। यह अभिप्राय नहीं है कि श्रीहर्ष ने शब्दाडम्बर से मुक्त कविता नहीं लिखी है, देखिए एक उदाहरण—

**मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।  
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो विधेस्त्वां करुणा रुणद्धि नो॥**

**श्रीहर्ष की नवीनताएं**

श्रीहर्ष ने नैषध में कुछ ऐसे प्रयोग किये हैं, जो आज भी बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त हैं—

**“जनाने कः करमर्पयिष्यति?” “आसितं नादत्त॥”**

श्रीहर्ष ने वार्तालाप के प्रसंगों में नाटकीयता लाने का प्रयत्न किया है—“दृष्ट दृष्टम्, तदवद् ब्रवीषि न” इत्यादि।

श्रीहर्ष ने अनेक नये शब्दों का योगदान भी किया जैसे—“भूजानि (राजा) सूननायक (कामदेव) अप्रतीतचर (पहले से अज्ञात) अधिगाभुका (जानने वाली) इत्यादि।

**कुछ अप्रसिद्ध कवि**

**1. मेण्ठ**

यह महाकवि काश्मीर के निवासी थे। इन्होंने हयग्रीववध लिखा है। इसमें भगवान् विष्णु के द्वारा हयग्रीव के वध की कथा है। यह महाकवि छठी शताब्दी के अन्तिम भाग में हुए होंगे।

## 2. भीम

इस महाकवि ने रावणार्जुनीय लिखा है। इसमें 27 सर्ग हैं और रावण तथा कार्तवीर्यार्जुन के परस्पर युद्ध की कथा है। कवि का मुख्य उद्देश्य व्याकरण के नियमों का व्याख्यान करना है। इनका समय ईसा की सातवीं शताब्दी के आस-पास है।

## 3. शिवस्वामी

इन्होंने कप्फनाभ्युदय लिखा है। इसकी कथा अवदानशतक में आई हुई एक कथा पर आश्रित है और इसमें दक्षिण के किसी राज्य कप्फन के बौद्धधर्म की दीक्षा लेने का वर्णन है। कवि पर भारवि और माघ का प्रभाव पड़ा दिखाई देता है। इसमें कई रोचक वर्णन हैं। शिवस्वामी बौद्ध थे, जिसने काश्मीर-पति अवन्तिवर्म के आश्रय में रह कर यह काव्य लिखा था।

## 4. रत्नाकर

महाकवि रत्नाकर भी काश्मीर के निवासी थे। रत्नाकर ने हरविजय लिखा है। इसमें अन्धक के ऊपर प्राप्त की हुई भगवान् शिव की विजय का वर्णन है। यह 50 सर्गों का एक विपलकाय महाकाव्य है। इसे 850 ई. के आस-पास रत्नाकर ने लिखा। वे रीतिवादी कवि हैं।

## 5. मङ्ख

महाकवि मङ्ख काश्मीर के रहने वाले थे और बारहवीं शताब्दी में हुए। यह विख्यात काव्याशास्त्री रूय्यक के शिष्य थे। मङ्ख के श्रीकण्ठचरित काव्य में 25 सर्ग हैं। इसमें श्रीकण्ठ अर्थात् भगवान् शिव द्वारा त्रिपुरासुर की पराजय का वर्णन है। इसमें नीति पर कई प्रवचन हैं तथा तत्कालीन शिष्ट समाज का वर्णन भी है। इस काव्य में विद्वानों की सभाओं का अत्यधिक रूचिकर वर्णन है।

ऊपर लिखित काव्यों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में लगभग सौ और काव्य प्राप्त होते हैं। हर एक काव्य का अपना अस्तित्व है यद्यपि बाद में काव्य यंत्रवत् लिखे प्रतीत होते हैं, उनकी रचना शैली में भी अपना व्यक्तित्व है। आधुनिक काल में भी कुछ कवियों ने कालिदास का अनुकरण करने का प्रयास किया है। जैसे गंगादेवी द्वारा रचित मथुराविजय। इसमें भाषा की सादगी तथा लालित्य विद्यमान है।

## संस्कृत में खण्डकाव्य (गीति काव्य) का उद्भव विकास

### खण्डकाव्य (गीति-काव्य) का स्वरूप

संगीतात्मक खण्ड काव्य ही गीतिकाव्य कहलाता है। इसका मुख्य प्राण गेयता ही होता है। संस्कृत साहित्य में इस दृष्टि से प्राप्त होने वाले गीतिकाव्य अनेक हैं तथा अपने मूल रूप में संगीत एवं साहित्य के प्राणभूत तत्व हैं। इनमें भावतत्त्व का प्राधान्य होता है। यद्यपि संस्कृत भाषा में साहित्य के जो मुख्य भेद दिये गये हैं, उनमें 'गीतिकाव्य' नाम से कोई विशिष्ट भेद नहीं, तथापि 'संस्कृत गीति-काव्य' जब कहा जाता है तो उसका आशय गेय या गाने योग्य कविता से होता है। वस्तुतः 'गीति-काव्य' शब्द अंग्रेजी के 'लिरिक-पोएट्री' शब्द का समानार्थक है। शास्त्रीय दृष्टि से गीति-काव्य को खण्ड काव्य कहा जाता है, क्योंकि इसमें महाकाव्य के पूरे गुण नहीं होते—'खण्ड काव्य भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च'<sup>1</sup> गीतिकाव्यों में प्रायः मुक्तक पद्य होते हैं। ऐसे पद्यों में पूर्वापर प्रसंग की आवश्यकता नहीं होती। वे अपने आप में पूर्णतया स्वतंत्र होते हैं और पूरा भाव एक ही पद्य में पूर्ण हो जाता है—'पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्चणा क्रियते तदेव मुक्तम्'<sup>2</sup> गीतिकाव्य भावप्रधान होते हैं। इनमें अन्तरात्मा की ध्वनि होती है। जीवन का कोई एक पक्ष वर्णित होता है। महाकाव्य में यदि जीवन की समग्रता है तो गीतिकाव्य में एकदेशीयता। महाकाव्य में विस्तार है तो गीतिकाव्य में घनत्व। महाकाव्य में शिथिलता है तो गीति-काव्य में एकाग्रता और तन्मयता।

लायर (Lyre) यूरोप का एक वाद्य-यन्त्र है। अतः जो गीत लायर-वाद्य की सहायता से गाया जाय, उसे अंग्रेजी में 'लिरिक-पोएट्री' कहते हैं। 'लिरिक-पोएट्री' के अन्तर्गत, प्रेमगीत, शोकगीत और भक्तिगीत आते हैं। इसमें हृदय के उद्गारों की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक तीव्र होती है इसलिए लिरिक-पोएट्री (गीति-काव्य) अधिक भावनात्मक मानी जाती है। इस प्रकार की कविता का सभी युगों और समस्त भाषाओं में होना स्वाभाविक ही है। जब वाल्मीकि ने कहा था—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः  
यस्कौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

सम्भवतः तभी संस्कृतगीतिकाव्य का प्रादुर्भाव हो गया था। उस कविता के विषय में आदि कवि ने स्वयं कहा था—'पादबद्धोऽक्षरसमः तन्त्रीलयसमन्वितः' जो स्पष्टतः उस कविता की गीतात्मकता का प्रमाण है।

### संस्कृत भाषा में खण्डकाव्य (गीतिकाव्य)

साहित्य वैपुल्य (विपुलता, अधिकता) की दृष्टि से संस्कृत भाषा के कवियों ने बहुत अधिक गीति-काव्यों की रचना नहीं की है। गीतिकाव्य प्रबन्धकाव्य अथवा महाकाव्य की भाँति विस्तृत नहीं है। उसमें चार-चार पंक्तियों में शृंगार रस से परिपूर्ण छोटे-छोटे शब्द चित्र हैं। उनमें सूक्ष्म-निरीक्षण और भावों की गहनता का प्राचुर्य है। उनमें से कुछ तो रूप और कथा की दृष्टि से अनुपम रचनाएँ हैं। गीतिकाव्य में प्रकृति का अपना महत्त्व है। पशु-पक्षी जगत् उनमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। निश्चित काल-क्रम के अभाव में संस्कृत गीति-काव्यों का निर्विवाद इतिहास भी नहीं प्रस्तुत किया जा सकता तथापि उल्लेखनीय संस्कृत गीति-काव्य 400 ईस्वी से लेकर 1100 ईस्वी के मध्य लिखे गये हैं और उन्हें शृंगारिक व धार्मिक भेदों में विभक्त किया जा सकता है। काव्य एवं नाटकगत वैशिष्ट्य के साथ महाकवि कालिदास ने गीतिकाव्य के क्षेत्र में भी अपने को अनुपम सिद्ध किया है। उनके ऋतुसंहार एवं मेघदूत गीतिकाव्य के शिष्ट उदाहरण हैं।

### उद्गम और विकास

गीतिकाव्य का उद्गम ऋग्वेद से ही होता है। ऋग्वेद में उषा, विष्णु, इन्द्र, वरुण, रुविता अदिति और मरुत् आदि देवों की अनेक सूक्तों में स्तुति की गई है और उनके गुणों का भाव-विह्वलता के साथ वर्णन किया गया है। वाल्मीकि-रामायण और महाभारत में अनेक स्थानों पर राम और श्रीकृष्ण की स्तुति की गई है। गीता के 11वें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण के विराट् रूप की स्तुति की गई है। भागवत-पुराण, विष्णु पुराण, नारद-पुराण तथा अन्य पुराणों में उपास्य देव की स्तुति मिलती है। अध्यात्म-रामायण में राम की ब्रह्म के रूप में स्तुति वर्णित है। लौकिक साहित्य में कालिदास से गीतिकाव्य का प्रारम्भ होता है।

1. साहित्य दर्पण 6/239

2. ध्वन्यालोक

## खण्डकाव्य ( गीतिकाव्य ) के दो भेद

विषय की दृष्टि से गीतिकाव्य को तीन भागों में बांटा जा सकता है। श्रृंगारिक और धार्मिक एवं नैतिक गीतिकाव्य। श्रृंगारिक गीतिकाव्य में मानवीय प्रेम का उदात्त रूप प्रस्तुत किया गया है। प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे के बाह्य सौन्दर्य पर ही नहीं, आन्तरिक सौन्दर्य पर भी रीझते हैं और अपने प्रेम की कोमल-भावना मसृण पदावली में प्रकट करते हैं। धार्मिक गीतिकाव्य किसी एक उपास्य देव को लेकर भाव प्रधान अनुभूति मूलक गीतिकाव्य है। नैतिक गीतिकाव्यों में नैतिक शिक्षाओं को मुक्तकों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

कालिदास संस्कृत-गीतिकाव्य के प्रवर्तक हैं। उन्होंने दो गीतिकाव्यों की रचना की—ऋतुसंहार और मेघदूत। एक में बाह्य प्रकृति प्रमुख है तो दूसरे में अन्तः प्रकृति, एक में यौवन का उन्माद है तो दूसरे में यौवन का विषाद। एक में अप्रौढ़ता है तो दूसरे में प्रौढ़ता, एक में कला प्रधान है तो दूसरे में भाव का प्राधान्य है।

### ‘मेघदूत’ और उसके पाठभेद

संस्कृत भाषा का सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य ‘मेघदूत’ है। महाकवि गेटे ने भी इसके काव्य सौन्दर्य की प्रशंसा की है। प्रसिद्धि के कारण ही सम्भवतः इसमें प्रक्षिप्तांश इस सीमा तक बढ़ गए हैं कि दक्षिणावर्तनाथ ने ईसा की 12वीं शताब्दी में जिस संस्करण पर टीका की है उसमें केवल 110 श्लोक हैं जबकि 14वीं शताब्दी में मल्लिनाथ द्वारा की गयी टीका वाले ‘मेघदूत’ की श्लोक संख्या 120 हो गयी है। सम्भवतः श्री दक्षिणावर्तनाथ को उतने ही श्लोक प्राप्त हुए हों। इस ग्रन्थ का एक आदिम रूप जिनसेन (8वीं शती) की पार्श्वभ्युदय नामक रचना में सुरक्षित प्रतीत होता है। यह रचना ‘मेघदूत’ की समस्यापूति के रूप में लिखी गयी है और इसमें 120 श्लोक हैं। वल्लभदेव (10वीं शती) और पुराणसरस्वती ने ‘मेघदूत’ के जिन संस्करणों की व्याख्या की है, उनके श्लोकों की संख्या 110 व 111 है जबकि इस ग्रन्थ के तिब्बती और सीलानी (लंका के) संस्करणों में उनकी संख्या क्रमशः 117 व 118 मिलती है।

### मेघदूत की शैली

मेघदूत की शैली वैदर्भी है, इसमें ललित पद विन्यास, कोमलभाव सरस पदावली और प्रसाद और माधुर्य गुण का समन्वय है। इसमें भावों का गांभीर्य, विचारों की महनीयता, कल्पना की कमनीयता, हृदय की उदात्तता, अनुभूतियों की संवेदनशीलता, विप्रलम्भ श्रृंगार की सात्त्विकता है। कालिदास व्यंजनावादी कवि हैं अतः पूरे काव्य में व्यंग्यार्थ मुख्य है। प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति सुकुमार भाव और कमनीय पदावली का सुन्दर सम्मिश्रण है।

मेघदूत गीतिकाव्य का वर्ण्य विषय सर्वथा सामान्य है। स्वामी के शाप द्वारा अपनी प्रेयसी से बिछुड़ा हुआ एक यक्ष प्रिया को अपना विरह-व्यथापूर्ण सन्देश भेजने के हेतु मेघ को अपना संदेश वाहक (दूत) बनाता है। मेघ द्वारा संदेश भिजवाने के विचार की प्रेरणा महाकवि कालिदास को रामायण में हनुमान द्वारा किये गये कार्य अथवा महाभारत के नलोपाख्यान में हंस द्वारा निभाये गये उत्तरदायित्व से मिली होगी। रामायण में वर्षा-वर्णन के साथ इसका बहुत साम्य है। तथापि मेघदूत में कालिदास की अपनी कल्पना का प्रभूत उपयोग हुआ है। उनका काव्य मौलिक है और वाक्य विन्यास श्रेष्ठ है। एक जातक कथा में भी एक पुरुष अपनी निराश पत्नी के पास एक कोए को भेजता है। कालिदास ने एक जड़ पदार्थ द्वारा संदेश भेजने की अपनी कल्पना का औचित्य मेघदूत में सर्वथा सिद्ध कर दिया है—

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः  
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।  
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं यथाचे  
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु॥

एक क्षीण एवं निराश यक्ष उत्तर दिशा को जाते हुए काले मेघ को देखता है। मानसिक रूप से वह यक्ष भी अपने प्रवास स्थान राजगिरि से अपनी प्रिया निवास स्थान अलकापुरी तक मेघ के साथ यात्रा करता है। ‘मेघदूत’ के पूर्वाद्ध में मेघ की यात्रा का पथ—विदिशा नगर सहित दशार्णदेश, महाकाल मन्दिर सहित उज्जयिनी, दशपुर व कुरुक्षेत्र जैसे पवित्र नगर और तत्पश्चात् कनखल से प्रारम्भ होकर कैलास, क्रोज्चक्षेत्र व मानसरोवर होते हुए अलौकिक नगरी अलकापुरी तक का मार्ग वर्णित है। ‘मेघदूत’ निश्चय ही एक परिपक्व कवि-मस्तिष्क की उपज है तथा कालिदास की अनुपम सृजनशक्ति का प्रमाण है। यद्यपि कवि ने मन्दाक्रान्ता जैसे विस्तृत एवं कठिन छन्द का प्रयोग किया है तथापि उनका निर्वाह पर्याप्त एवं प्रवाहमयता से हो सका है।

विरही यक्ष की सुकुमार-भावनाओं से सुन्दरता तथा स्वाभाविक रूप से मिश्रित अद्भुत व्यंजनाओं से परिपूर्ण परिवर्तन होते हुए दृश्यों का चित्रण कालिदास ने बड़ी सफलता से किया है। रवीन्द्रनाथ ने ठीक ही कहा कि विरह-भावना और प्रियमिलन की कामना का वर्णन करने के लिए भारतीय वर्षा ऋतु से बढ़ कर और उपयोगी पृष्ठभूमि सम्भव नहीं है। इसी वर्षा ऋतु में घनीभूत स्मृतियों के आधार पर यक्ष की सुकुमार-भावनाओं का चित्रण इस गीतिकाव्य में हुआ। यक्ष के शोक प्राबल्य को पथ के आश्चर्यजनक व अनुकूलप्राकृतिक दृश्य मुखर करते हैं और उन्हीं के तन्तुओं में कालिदास की काव्य-कला गुम्फित है।

उपर्युक्त वातावरण में वह विरही यक्ष अपनी प्रिया की किसी न किसी विशेषता की समता करने वाली अनेक वस्तुओं को पाता है। पर हाय! उन सभी विशेषताओं को एक साथ नहीं देख पाता—

श्यामास्वंगं चकितहरिणीप्रेक्षणो दृष्टिपातं  
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।  
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्  
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।

पुनर्मिलन की आशा सदा यक्ष के साथ है—

पश्चादावां विरहगुणितं तं तमेवाभिलाषं  
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु।

तथापि निर्मम विधाता उस समय उनके मिलन को चित्र रूप में भी नहीं सह सकता—

त्वामालिख्य प्रणयकृपितां धातुरागैशिशलाया—  
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।  
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैः दृष्टिरालुप्यते मे  
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः।

यक्ष-प्रिया, जो सम्भवतः विधाता की अपने ढंग की प्रथम कृति थी, का वर्णन सौन्दर्य की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस वर्णन में कालिदास की कल्पना द्रष्टव्य है—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी  
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।  
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां—  
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥

‘मेघदूत’ की गीति-काव्यात्मकता

भावों की गहनता के साथ-साथ मेघदूत में सुन्दर प्रकृति चित्रण भी है किन्तु कुछ आलोचकों के अनुसार “अस्वाभाविकता के तत्त्वों ने काव्य-प्रभाव को कम किया है।” सर्वप्रथम यक्ष कुछ समय के लिए ही प्रिया से पृथक् हुआ है। दूसरे वह एक देवयोनि का है अतः उसे किसी प्रकार का दुःख या भय नहीं होना चाहिए। अतः पाश्चात्य आलोचकों की दृष्टि से यदि संदेश, पुनर्मिलन की आशा से सर्वथा रहित किसी असहाय बंदी द्वारा भेजा जाता तो अधिक सफल होता। इस प्रकार की कविता के उदाहरण के रूप में शिलरकृत ‘मेरिया स्टुअर्ट’ को प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें बंदिनी स्काट की रानी मेघ से अपने प्रेमी के प्रदेश की अभ्यर्थना करने का आग्रह करती है तथापि कीथ के मत में—“अभिव्यक्ति की सबलता, वस्तु की सम्पन्नता एवं मनोभावों को साकार कर सकने के सफल सामर्थ्य के कारण आलोचकों ने (मेघदूत को) कालिदास की कृतियों में प्रथम स्थान दिया और यह प्रशंसा अनुचित नहीं है।”

डॉ. एस. के. डे. कहते हैं—“यह सही है कि इस कविता का वातावरण बहुत अधिक काल्पनिक है, इसमें स्वप्नलोक की-सी घटनाएँ हैं, इसके पात्र देव-तुल्य हैं और तदनकूल कल्पना ही इसमें प्रयुक्त है तथापि ये सब इस काव्य की मानवीयता एवं श्रृंगाररस की आश्चर्यजनक अभिव्यक्ति का निरोध नहीं करते।

सम्भव है कि वास्तविक गीति-काव्य के लिए अपेक्षित विषयवस्तु ‘मेघदूत’ में न हो तथापि गीतिमय मन्दाक्रान्ता छन्द द्वारा प्रकट उद्दाम भावना की सम्पन्नता ने इस काव्य को एक यथार्थ गीति-काव्य सिद्ध कर दिया है। मेघदूत में प्राप्त स्थानों के कारण यह भूगोल-विदों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

इस काव्य की अनुकृति पर आज तक अनेक दूत-काव्यों की रचनाएँ हो चुकी हैं तथापि अब भी अपनी श्रेणी की यह सर्वश्रेष्ठ अथवा अद्वितीय कृति है।

### मेघदूत का दार्शनिक पक्ष

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने मेघदूत के दार्शनिक पक्ष का विवेचन किया है। मेघ काम है, काम का दमन करने पर ही शिवत्व की प्राप्ति होती है। अतएव पूर्व मेघ 37 से 40, 59, 60 श्लोकों में महाकाल, गण, नीलकण्ठ आदि का उल्लेख है। इन श्लोकों में स्पष्ट किया गया है कि मेघ (काम) शिव की भक्ति में लीन होता है। शिव की भक्ति से ही कामी का काम शान्त होता है और ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। अतः शिव, विष्णु और ब्रह्म के अद्वैतवाद, शिव और कूटस्थ आत्मा का तादात्म्य और योग द्वारा उस अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार ही कालिदास का दार्शनिक मत है।

### अन्य दूत-काव्य

‘मेघदूत’ की प्रतिकृतियों में से पार्श्वभ्युदय की चर्चा पहले की जा चुकी है। इसके रचयिता जिनसेन 814 ईस्वी में विद्यमान थे और उन्होंने अपनी इस रचना में 23वें जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जीवनी लिखी है। अज्ञातकाल विक्रम द्वारा विरचित ‘नेमिदूत’ भी इस शैली की कृति है।

धोई विरचित ‘पवनदूत’ एक और महत्वपूर्ण दूत-काव्य है जिसमें एक गंधर्व-रमणी ने अपने आश्रयदाता बंगनरेश लक्ष्मण सेन (15वीं शती) को संदेश भेजने के लिए पवन को दूत बनाया है। वसन्तदेशिककृत ‘हंसदूत’ मुख्यतः एक भक्ति-काव्य है जिसमें तमिलनाडु के तीर्थ स्थानों का वर्णन है। दूसरे तमिलकवि उद्दण्ड (1400 ई.) ‘कोकिलदूत’ के रचयिता है। श्रीकृष्ण चैतन्य के शिष्य रूपगोस्वामी (1400 ई.) के दो दूत-काव्य भक्ति-प्रधान हैं। 19वीं शताब्दी में विद्यमान राम-शास्त्री ने ‘मेघ प्रति संदेश’ नामक काव्य लिखा है जिसमें ‘मेघदूत’ के यक्ष द्वारा प्रेषित संदेशों का उत्तर उसकी यक्षणी प्रेयसी ने दिया है। इस सूचि में अनेकों अन्य गौण-दूत-काव्यों की गणना भी की जा सकती है।

### ‘ऋतु संहार’ और उसके रचयिता

कवि कुलगुरु महाकवि कालिदास की संदिग्ध कृतियों में से ‘ऋतु संहार’ का स्थान प्रमुख है और इसे महाकवि की युवा कल्पना की रचना घोषित किया जाता है। कालिदास की तीन विशिष्ट काव्य-कृतियों के टीकाकार मल्लिनाथ ने इसकी उपेक्षा की है और प्राचीन संस्कृत काव्य-शास्त्रियों ने अपनी परिभाषाओं के उदाहरण इसमें से उद्धृत नहीं किए। साथ ही प्राचीन संस्कृत पद्यावलियों में भी ‘ऋतु संहार’ के उद्धरण नहीं मिलते। इसीलिए इस काव्य को कालिदास विरचित मानने में संदेह किया जाता है। तथापि प्रो. कीथ (Keith) ने इन सब संदेहों का निराकरण ‘अनिश्चित’ कहकर किया है और कहा है कि ‘ऋतु संहार’ कालिदास की कृति होने योग्य है और यदि इसे कालिदास की कविता के रूप में न स्वीकार किया गया तो महाकवि के सम्मान को वास्तविक क्षति पहुँचेगी।

### ‘ऋतु संहार’ की विषय वस्तु एवं शैली

जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है, ‘ऋतु संहार’ में ऋतुओं के चक्र का अत्यन्त काव्यमय और सुन्दर वर्णन है। यद्यपि भारत की रूढ़ि-प्राप्त 6 ऋतुओं का विस्तार वर्णन इस काव्य में नहीं मिलता तथापि युवा-कल्पना के प्रेमी कवि के दृष्टिकोण से ऋतुओं का बहुविध चित्र इसमें प्रस्तुत किया गया है। चित्रित दृश्य परम्परागत है और इनमें बहती हुई नदियों, आर्लिगन करती हुई लताओं और चुम्बन शील मेघों के वर्णन सुपर्याप्त हैं। प्रयुक्त मुहावरे सरल और संगीतमय हैं तथापि ‘मेघदूत’ की सी वर्णन सम्पन्नता ‘ऋतु संहार’ में प्राप्त नहीं होती। यद्यपि ‘ऋतु-संहार’ की तुलना में बहुत अधिक सम्पन्न कविता के दर्शन कालिदास की अन्य रचनाओं में होते हैं, तथापि आधुनिक मानवमन को प्रभावित करने वाली जो काव्यगत स्वच्छन्दता इस कृति में मिलती है, कालिदास की परवर्ती रचनाओं में उनका प्रायः अभाव है।

ग्रीष्म ऋतु के वर्णन के साथ काव्य प्रारम्भ होता है। इस समय दिन की चुभती धूप जितनी पीड़ा देती है, उतना ही सुख चाँदनी रात से मिलता है। प्रकृति व जीवजन्तु इस ऋतु से बहुत प्रभावित होते हैं और वह प्रभाव सर्प, सिंह, हाथी, भैंस, बारहसिंघा, मोर, सारस, दादुर, मछली, वृक्ष और झाड़ी आदि के वर्णन से स्पष्ट झलकता है। ग्रीष्म के बाद विद्युत की पताका फहराती है और गर्जन का ढोल पीटती हुई वर्षा आती है। तत्पश्चात् मुस्कराती हुई युवतियों के चमकते दांतों व दमकते ओठों से स्पर्धा करने वाले मल्लिका (चमेली) पुष्पों और अशोक कोरकों (कलियों) के साथ शरद ऋतु आती है। शिशिर ऋतु में रंगों की बहार प्रेमियों के मनो को प्रफुल्लित करती है। वसन्त ऋतु स्वाभाविक रूप से कवि को सर्वाधिक आकृष्ट करती है। प्रेमिकाएँ बहुरंगी पुष्पों से स्वयं को सजाती हैं और कामदेव अपना भरपूर रंग जमाता है।

## भर्तृहरि और उनके शतक

कालिदास के पश्चात् मुख्य उल्लेखनीय गीतकार भर्तृहरि हैं, जो एक साथ ही वैयाकरण, दार्शनिक एवं कवि माने जाते हैं। मैकडानल के अनुसार “केवल भारतीय इतिहास साधना ही इस प्रकार का संयोग संभव बना सकी है और तिस पर भी यह अतुलनीय है।” इन्होंने शृंगार-शतक, नीति-शतक और वैराग्य-शतक नामक तीन शतकों (सौ श्लोकों वाले काव्यों) की रचना की है। इन काव्यों के नामों से ही स्पष्ट है कि इनमें शृंगार, नीति व वैराग्य से सम्बन्धित सौ-सौ श्लोक हैं। उनका समय ईसा के सप्तम शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है क्योंकि तत्कालीन चीनी यात्री इत्सिंग ने भर्तृहरि का उल्लेख ऐसे व्यक्ति के रूप में किया है जो सात बार सन्यास ग्रहण करके फिर गृहस्थ बन गया था।

इन तीनों शतकों में आये श्लोकों की प्रामाणिकता सिद्ध करने का प्रयत्न व्यर्थ ही है क्योंकि उनमें तन्त्राख्यायिका, अभिज्ञान शाकुन्तल, मुद्राराक्षस एवं कुछ अन्य सूक्ति संग्रहों के श्लोक मिलते हैं जो कि अन्य कवियों द्वारा विरचित-रूपों में प्रसिद्ध हैं।

यद्यपि इत्सिंग ने वैयाकरण और मानव जीवन के सिद्धान्तों के एक लेखक के रूप में भर्तृहरि का उल्लेख किया है, तथापि इस शतकत्रय के लेखक के रूप में उसने भर्तृहरि की कोई चर्चा नहीं की। इत्सिंग ने भर्तृहरि को बौद्ध लिखा है पर रचनाओं के द्वारा वे वेदान्त शैव अधिक प्रतीत होते हैं। मैक्समूलर वैयाकरण भर्तृहरि को बौद्ध सिद्ध करने में कुछ सीमा तक सफल सिद्ध हुए हैं। इसलिए यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका कि भर्तृहरि दो थे अथवा एक ही भर्तृहरि ने बाद में अपना सम्प्रदाय बदल दिया था। सम्भव है कि इत्सिंग ने इस तथ्य पर ध्यान न दिया हो।

प्रोफेसर कीथ के विचार से नीति और वैराग्य शतकों में तो कुछ श्लोक अन्य कवियों के भी हो सकते हैं, पर शृंगार-शतक सर्वथा भर्तृहरि की रचना है। जहां तक वाक्यपदीय और इन शतकों का सम्बन्ध है, पहले का रचयिता कोई अद्वैत वेदान्ती और दूसरे वर्ग का लेखक कोई शैव प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त इन शतकों का प्रणेता व्याकरण में उतना प्रवीण नहीं प्रतीत होता जितना वाक्यपदीय के रचनाकार (वैयाकरण भर्तृहरि) को होना चाहिए था।

शृंगार-शतक के 9वें श्लोक में कवि कहता है कि अज्ञानावस्था में सारा संसार रमणियों से भरा प्रतीत होता है पर ज्ञान का प्रकाश होते ही सब कुछ ब्रह्ममय हो जाता है। यह भावना इस कल्पना में सहायक होती है कि शृंगार शतक का रचयिता ही वैराग्य-शतक का प्रणेता रहा होगा। एक अन्य श्लोक कवि के मन की दुविधा को आकर्षक ढंग से स्पष्ट करता है—

### आवासः क्रियतां गागे पापवारिणि वारिणि स्तनमध्ये तरुण्या वा मनोहारिणि हारिणि

इसी प्रकार और भी अनेक पद्य उद्धृत किये जा सकते हैं जो सिद्ध करते हैं कि कवि का मन सचमुच दुविधा में था।

भर्तृहरि की रचना में सर्वश्रेष्ठ संस्कृत का साक्षात्कार होता है। इन रचनाओं में हमें कहीं रूढ़िबद्ध लम्बे तथा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन नहीं प्राप्त होते जबकि महाकाव्य इनसे भरे हुए होते हैं। इन श्लोकों में शब्दों का वह आडम्बर भी नहीं दिखाई पड़ता जो कविता में कवित्व की कमी प्रदर्शित करता है और उसको अधिक बौद्धिक बनाता है। यहां प्रत्येक श्लोक अपने आप में परिपूर्ण है और केवल एक भाव को अभिव्यक्त करता है जो चाहे प्रेम का हो, वैराग्य का हो या नीतिपूर्ण हो—होगा वह सुसंस्कृत स्वरूप में ही। संस्कृत भाषा का एकरूपता सम्बन्धी गुण और शार्दूलविक्रीडित आदि दीर्घ छन्दों का प्रयोग कवि एवं राजर्षि भर्तृहरि को अपने विचार साररूप में प्रकट करने का अवसर देता है तथा इन कारणों से श्लोकों की गीतात्मकता बढ़ जाती है।

भर्तृहरि की शैली में प्रसाद और माधुर्य है। पद्य अत्यन्त सरल, सुबोध और श्रुति सुखद हैं। भाषा का लालित्य, भावों की गहराई, अनुभूति का पुट, रसों का सुन्दर समावेश, अलंकारों की रमणीय छटा और कवित्व का कमनीय समन्वय इनके प्रत्येक पद्य को बहुत मनोहर बना देता है। भाषा में प्रवाह और लोच है, सरसता और सहृदयता है। मार्मिक अनुभूतियां बलात् पाठक को आकृष्ट कर लेती हैं। इनमें आदर्शवाद के लिये नीति एवम् शिक्षाप्रद नीति श्लोक हैं, शृंगारी के लिए शृंगाररस के श्लोक हैं और भक्त के लिए वैराग्य के श्लोक हैं। इस प्रकार ये तीनों शतक सभी प्रकार के पाठकों के लिए चित्ताकर्षक हैं। संस्कृत कवित्व का सुन्दरतम रूप इन शतकों में मिलता है। इनकी लोकप्रियता इसी से जानी जा सकती है कि भर्तृहरि के श्लोक प्रसिद्ध सुभाषित और मुहावरे बन गये हैं। बहुत गहराई और अनुभूति के साथ प्रत्येक वर्ण्यविषय का वर्णन है।

विषयों की असारता, प्रेम की अस्थिरता और यौवन के उन्माद पर उनका प्रसिद्ध श्लोक है—

“यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता  
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।



अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या

धिक् तां च तं च मदं च इमां च माम् च॥” (नीतिशतक 2)

परोपकार निरत और परगुण-ग्राही सज्जन विरले होते हैं—

“मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्ण

स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।

परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं

निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥ (नीतिशतक 79)

तीनों शतकों में अनेकों सुभाषित मिलते हैं जो एक से एक सुन्दर और स्मरणीय हैं। ये भर्तृहरि की काव्य प्रतिभा, दार्शनिकता, मार्मिक अनुभूति, भावोत्कर्ष, सूक्ष्म दृष्टि और व्यापक ज्ञान के द्योतक हैं।

### अमरु और उनका शतक

अमरु या अमरुक, जिनके विषय में अधिक ज्ञात नहीं हैं, के द्वारा विरचित एक शतक बताया जाता है जिनके विभिन्न संस्करणों में 90 से लेकर 115 तक श्लोक पाये जाते हैं। इसके चार प्रमुख संस्करणों में समानरूप से उपलब्ध श्लोकों की संख्या केवल 51 है। अर्जुनवर्मन्, चतुर्भुजमिश्र, कोकसम्भव, नन्दलाल, रविचन्द्र, रामचन्द्र, वेमभूपाल, शंकराचार्य, हरिभट्ट व ज्ञानानन्द कलाधरसेन आदि ने इस पर अपनी टीकायें लिखी हैं। अन्तिम टीकाकार ने प्रत्येक पद्य की व्याख्या दो प्रकार से की है—एक तो श्रृंगारपरक और दूसरी वैराग्यपरक। अमरु-शतक की ख्याति के रूप में इस उक्ति को ही प्रस्तुत किया जा सकता है—“एकमेवामरोः श्लोकः सत्प्रबन्धशताय च”—अर्थात् अमरु का केवल एक श्लोक सौ अच्छे प्रबन्धकाव्यों के समान है।

आनन्दवर्धन और वामन ने अमरु की कविता की चर्चा की है, पर उसके शतक के विषय में कुछ नहीं कहा है। अतः इनका काल-निर्णय बहुत कठिन है। यह भी सम्भव है कि दूसरों के द्वारा विचरित पद्य इनके शतक में समाविष्ट कर लिये गये हों। अमरु का प्रथम उल्लेख आनन्दवर्धन ने किया है। जिनका समय ईसा की अष्टम शताब्दी है—अपने ग्रन्थ में ध्यवन्यालोक में अमरुक की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा है—‘अमरुकस्य कवेर्मुक्तका श्रृंगाररस-स्यन्दिनः प्रबन्धायमाना प्रसिद्धा एव’। काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने अमरुक को बहुत आदर दिया है। इनके पद्यों की ध्वनि अत्यन्त मार्मिक होती है। आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश (उल्लास 1) में ध्वनिकाव्य के उदाहरण के रूप में अमरुक का एक पद दिया है। इसलिए इस समय तक अमरु विख्यात हो चुके थे, यह असंदिग्ध है। कर्णपरम्परा इस शतक की रचना का श्रेय श्री शंकराचार्य को देती है और कहती है कि भारती नामक मण्डनमिश्र (सुरेश्वराचार्य) की विदुषी पत्नी से शास्त्रार्थ करते हुए जब वे कामशास्त्र सम्बन्धी प्रश्न से परास्त हो गए तब एक राजा के मृतक शरीर में काम-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रविष्ट हो गए और परिणामस्वरूप इस शतक की रचना की। इस सम्बन्ध में आलोचकों का मतभेद है।

वेमभूपाल द्वारा की गई टीका में प्रत्येक श्लोक को नायिका-भेदों के एक विशिष्ट उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाना भी निराधार ही प्रतीत होता है क्योंकि अमरु शतक का विषय सामान्य रूप से श्रृंगार है। अमरु ने प्रेमियों की विभिन्न चित्त वृत्तियों—मिलन, निराशा, क्रोध और समर्पण—का सुन्दर चित्रण किया है। विरह और मिलन की विभिन्न अवस्थाओं के वे सुन्दर चित्ते हैं। उनका प्रेम आदर्श न होकर शारीरिक है। उनके काव्य में भावों की कोमलता और विचारों की उदात्तता (उच्चता) मिलती है। यह शतक जीवन के अन्य अंशों का वर्णन नहीं करता। अमरु की कविता का श्रृंगार उदात्त एवं उच्च भावों से युक्त है तथा प्रेमियों के छोटे-छोटे कलहों के द्वारा मन को आनन्दित करता है। उनकी समाप्ति भी मृदु मुस्कानों के साथ ही होती है। एक सुन्दर उदाहरण के रूप में निम्नलिखित पद्य प्रस्तुत किया जा सकता है।

‘बाले’ ‘नाथ’ ‘विमुञ्च मानिन रुषम्’ ‘रोषान्मया किं कृतम्’,

‘खेदोऽस्मासु’ ‘न में अपराध्यति भवान् सर्वेऽपराद्धा मयि’॥

‘तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा’ ‘कस्याग्रतो रुद्यते’

‘नन्वेतन्मम’ ‘का तवास्मि’ ‘दयिता’ ‘नास्मीत्यतो रुद्यते’॥

इस प्रकार अमरु प्रेम के विभिन्न रूपों का चित्रण करने में सिद्धस्त हैं। इनमें कहीं आनन्द है, तो कहीं निराशा, कहीं क्रोध है तो कहीं भक्ति। रोष और तोष के कई प्रसंग तो बहुत मोहक हैं। यद्यपि अमरु का क्षेत्र बहुत सीमित है तथापि सतत नवीनता और विचारों की मौलिकता का उसने सफल निर्वाह किया है। अमरु मोह और आवेगयुक्त श्रृंगार का वर्णन नहीं करते अपितु उनका श्रृंगार विवेकपूर्ण है और श्लोकों में सर्वत्र भावों की कोमलता और विचारों की सूक्ष्मता उपलब्ध होती है।

अमरु ने वैदर्भी शैली में अपना शतक लिखा है। इन श्लोकों में प्रसाद माधुर्य, कोमल कल्पना, सरसता और परिहास है। श्लोक सरस और भावपूर्ण हैं शब्दों का चयन बहुत सुन्दर है।

अमरु की कविता ने यूरोपीय विद्वानों को भी आकृष्ट किया है। फलस्वरूप फ्रेडरिक स्कर्ट और श्रोदर ने अमरु के कुछ श्लोकों का अनुवाद किया है। इसी प्रकार हर्टल और हेंस लिण्डक ने भी अमरु शतक के उल्लासपूर्ण जीवन के कुछ चित्र प्रस्तुत किये हैं।

### जयदेव और 'गीतगोविन्द'

महाकवि जयदेवकृत गीतगोविन्द में संस्कृत कविता की एक नई विद्या के दर्शन होते हैं जिसमें स्वरमाधुर्य गीति, लय और ताल का अद्भुत सामंजस्य है। इन गीतों में लोच, संगीत, हृदयग्राहिता, और कोमलता एक साथ मिलती है। इसे लेसेन ने गीत-नाट्य, जोन्स ने लोक-गीत, लेवी ने स्वांग, पिशेल ने भावनाट्य और श्रोदर ने समूह नाट्य या 'जात्रा' बताया है। इसकी कथा का मुख्य आधार कृष्ण द्वारा अन्य गोपियों से प्रेम करने पर राधा द्वारा अपने विराग की अभिव्यक्ति है। पर यह थोड़ी-सी बात इस ढंग से प्रस्तुत की गई है कि उसमें सामान्य काव्यों से अधिक नाटकीयता और सामान्य नाटक से अधिक संगीतात्मकता का समावेश हो गया है। संताप, गीत, वर्णन, विवरण एवं भाषण आदि काव्य की अनेक विधाएँ इसमें गुंथी हुई हैं। वस्तुतः कवि की यह सर्वथा मौलिक उद्भावना है जो कवि के अपने मस्तिष्क की उपज है। अतः गीतगोविन्द को श्रृंगारिक भक्ति गीतों में मूर्धन्य माना जा सकता है।

गीतगोविन्द में 12 सर्ग हैं जिसमें 24 प्रबन्ध हैं। प्रबन्धों में पुनः आठ-आठ पंक्तियों के गीत हैं जिन्हें राधा-कृष्ण और उनकी सखियों ने गाया है। इन गीतों में प्रेम के प्रत्येक पहलू (केवल आत्यन्तिक निराशा को छोड़कर) व्यथा, उत्कण्ठा, ईर्ष्या, क्रोध, मान-मनावन का सुन्दर चित्रण हुआ। मानवीय प्रेम के वर्णनों में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण चित्रण है।

जयदेव बंगनरेश लक्ष्मण सेन (1169 ईस्वी) की राज्यसभा के पंचरत्नों में से एक थे। अन्य चार रत्न, शरण, गोवर्धन, घोई, और उमापतिधर बताये जाते हैं। जयदेव की एक लघु हिन्दी कविता सिखों के आदि-ग्रन्थों और भक्तमाल नामक धार्मिक गन्थ में आज भी सुरक्षित है जिसमें उनकी कृष्ण-भक्ति की अनेक कथाएँ वर्णित हैं। इस प्रकार 'कविराजराज' जयदेव का दावा कुछ उचित प्रतीत होता है।

जयदेव की मधुर संगीतमय कविता ने केवल भारतीयों को ही नहीं, अनेक यूरोपीय विद्वानों को भी अपनी ओर आकृष्ट किया है। जर्मन कवि गेटे ने गीतगोविन्द के सर विलयन जोन्स कृत सामान्य अनुवाद को पढ़कर ही इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। वास्तविकता यह है कि गीतगोविन्द का निर्दोष अनुवाद सम्भव ही नहीं है क्योंकि इसमें संगीतात्मकता जिन संस्कृत लोकोक्तियों द्वारा उत्पन्न होती है संसार की अन्य भाषाओं में उनकी समता मिलनी असम्भव है।

बंगाल के यात्रा उत्सव के अवसर पर प्रयुक्त साहित्यिक सामग्री से गीतगोविन्द की प्राञ्जल कविता की रचना हुई है। जयदेव लम्बे व कठिन छन्दों के प्रयोग सम्बन्धी अपनी प्रवीणता तथा वाक्य विषयक असाधारण सामर्थ्य के बल पर ही विभिन्न शास्त्रीय रागों को अपने भावों के अनुरूप ढाल सके। गीतगोविन्द में प्रचुर एवं जटिल श्रृंगारिक भावों को तो ललित लयों सहित तुकान्त रूप में प्रस्तुत किया गया है और चरणों के मध्य व अन्त में अनुप्रासों का बाहुल्य सोने में सुहागा का काम करता है जैसे—

**चन्दन-चर्चित-नील-कलेवर-पीत-वसन-वन-माली।**

**केलिचलन्मणिकुण्डल-मण्डित-गण्ड-युग-स्मित-शाली॥**

**हरिरिव मुग्ध-वधू-निकरे।**

**विलसिनि विलसति केलि-पदे॥**

गीतगोविन्द की शैली वैदर्भी है। कहीं-कहीं लम्बे समासों का प्रयोग भी हुआ है परन्तु काव्य कहीं भी दुरूह नहीं हुआ है। वस्तुतः वह उत्सवों में गाये जाने वाले पद्य हैं। वे अत्यन्त सरल और संगीतमय हैं। वाक्यविन्यास को लयात्मकता और काव्य सौष्ठव अनुपम है। प्राकृतिक दृश्यों की सुन्दरता के साथ-साथ मानवीय प्रेम और भावनाओं का अनूठा संगम हुआ है। विशिष्ट पद-रचनाजन्य शब्द चित्रों की दृष्टि से गीतगोविन्द एक पूर्ण कृति है। सम्भव है कि ऐस्किलस सोफोक्लिस व यूरिपीडिस आदि कवि जीवन में प्रेम का महत्त्व प्रतिपादित करने में अधिक सफल सिद्ध हुए हों किन्तु इन कवियों की रचनाओं में जयदेव के समान भाव व शब्दसौन्दर्य के तादात्म्य का अभाव है। इस पर भी भी आश्चर्य की बात यह है कि जयदेव ने शब्दाडम्बर किए बिना तथा दीर्घ समासों का प्रयोग न करके ही यह चमत्कार उत्पन्न किया है। तथ्य की बात तो यह है कृत्रिम कविता

प्रसिद्ध जात्रा कथाओं के प्रसंग में असंगत सिद्ध होती है। इसीलिए यह गीति-काव्य दूरान्वय दोष और शब्दों के चाकचिक्य से मुक्त होता है।

गीतगोविन्द में यद्यपि राधा-कृष्ण का दिव्य प्रेम वर्णित है तथापि इसकी अध्यात्मपरक व्याख्या भी की जाती है। इसी कारण इस रचना को श्रृंगारिक कविता की अपेक्षा भक्ति-काव्य ही आधिक्य से माना जाता है। कृष्ण आत्मा है जो मोक्ष (राधा) को पाने के लिए उत्सुक है। गोपियों की क्रीड़ाएँ वे प्रलोभन हैं जिसमें अज्ञान में फंसी आत्मा डोलती रहती है। इष्टदेव के प्रति अपने प्रेम-वर्णन की परम्परा कालिदासकृत कुमारसंभव में भली-भाँति प्रदर्शित की गई है जो परवर्ती युग तक प्रभावित रही है। राधा-कृष्ण के प्रेम में जयदेव स्वयं तटस्थ नहीं रह सके। वे तो स्वयं को अपनी कथा से सम्बद्ध मानकर ही चलते हुए प्रतीत होते हैं जबकि यूरोपीय कवि अमानुषी जीवन वर्णन करते समय संदेह की भावना प्रकट करते हैं। “यदि हरि स्मरणे सरसंमनो यदि विलासकलासु कुतुहल। मधुरकोमलकान्त पदावलि शृणु तथा जयदेव सरस्वतीम्॥” यह एक श्लोक महाकवि जयदेवकृत गीतगोविन्द के महाभाव का परिचायक है तथा काव्य के प्राणभूत तत्त्व को प्रकाशित करता है। इसका भाव इस प्रकार है—‘यदि आपका मन हरिस्मरण में (भगवद्भक्ति) रसानन्द लेता है, (अथवा) यदि (सांसारिक) विलासकलाओं में आनन्दानुभूति करता है, (दोनों स्थितियों में) मधुर-कोमल-कान्त-पदावलीयुक्त महाकवि जयदेव की वाणी का श्रवण करें।

तुकान्त होने के कारण गीतगोविन्द को एक अपभ्रंश कविता का संस्कृत रूप सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है पर यह विचार लम्बी खींच-तान का परिणाम प्रतीत होता है। क्योंकि हम जानते हैं कि साहित्य-दर्पण ने ‘अन्त्यानुप्रास’ नामक एक अलंकार स्वीकार किया है जिसमें तुकान्तता अपरिहार्य है।

जयदेव का अनुकरण करते हुए विट्ठलेश्वर व नारायणतीर्थ नामक कवियों ने गीतगोविन्द के समान ही दो अन्य गीत-काव्यों की रचना का प्रयत्न किया जिनमें राधा-कृष्ण के स्थान पर क्रमशः सीताराम तथा शिवपार्वती को नायक-नायिका बनाया गया है।

### गीतगोविन्द का काव्य सौन्दर्य

जयदेव का कलात्मक सौन्दर्य अनुपम है। वही संस्कृत साहित्य में एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने काव्य और संगीत का पूर्ण समन्वय स्थापित किया है। जयदेव में काव्यसौन्दर्य, माधुर्य और शाब्दलालित्य प्रवाह और रागात्मकता का ऐसा संयोग है कि उनकी कविता में नर्तकी के नूपुरों की झंकार हैं, अभिनेत्री की कोमल काकली है, वीणा का तंत्रीनाद है, और तरुणी का लास्य है। हरि-कीर्तन के साथ रास-लीला की रमणीयता, कोमल कांत-पदावली की मधुरिमा और सरस्वती का कलकल-निनाद जयदेव की काव्यकला की प्रमुख विशेषतायें हैं। अतः कवि का कथन है

“यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतुहलम्।

मधुर कोमल कान्तपदावली शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥ (गीतगोविन्द 1-3)

गीतगोविन्द नृत्यगीति संगीत, विष्णुभक्ति, श्रृंगाररस का सुन्दर चित्र है। जयदेव की अभिव्यंजना शक्ति, कृष्णभक्ति, संगीतात्मक काव्य रूप और श्रृंगार का सरस प्रवाह अद्भुत है। उन्होंने पाठ्य और गीत, कथा, वर्णन और संवादों का बड़ी कुशलता के साथ समन्वय किया है। शब्द और अर्थ का उत्कृष्ट सामंजस्य है। छन्दों के प्रयोग में निर्दोषता, अलंकारों की छटा, भावों की सुकुमारता ने गीतगोविन्द के काव्य सौन्दर्य की वृद्धि की है। ध्वनि और अर्थ का सामंजस्य जयदेव में ही मिलता है। स्वयं कवि को अपनी कविता की मधुरता, प्रांजलता, सुकुमारता और सरसता का अभिमान था (गीतगोविन्द 12-12)। शब्द सौष्ठव, भावों की सुकुमारता और तन्मयता, संगीतात्मकता और कला की कमनीयता में गीतगोविन्द सर्वश्रेष्ठ है।

### कुछ अप्रसिद्ध श्रृंगारिक गीतिकाव्य

कालिदास, भर्तृहरि, अमरु और जयदेव के अतिरिक्त और ऐसे अनेक कवियों की दीर्घ परम्परा है जिन्होंने सामान्य कोटिक श्रृंगारिक गीतिकाव्यों की रचना की। इनमें से ऐतिहासिक महाकाव्य विक्रमांकदेवचरित के रचयिता प्रसिद्ध कवि बिन्हण का नाम सर्वप्रथम आता है। इस कवि ने 60 श्लोक वाले चौर-पञ्चाशिका नाम एक छोटे गीत-काव्य की रचना की है और उसमें एक राजकुमारी के साथ हुए अपने गुप्त प्रेम का विवरण दिया है। काश्मीरी परम्परा के अनुसार उक्त राजकुमारी का नाम राजकुमारी चन्द्रलेखा था और वह महिलापतन नरेश वीरसिंह की पुत्री थी। दक्षिण भारतीय संस्करणों में राजकुमारी का नाम यामिनी पुराणतिलका बताते हुए पंचाल नरेश मदनाभिराम को उसका पिता स्वीकार किया है।

माना जाता है कि वसन्ततिलका वृत्त में विरचित इन गीतिकाव्य का पाठ कवि ने अपनी मृत्यु के समय किया था। इसका प्रत्येक श्लोक ‘अद्यापि’ शब्द से प्रारम्भ होता है और इसकी शैली कवि की दूसरी रचना विक्रमाङ्क-देवचरित से बहुत अधिक प्राञ्जल है। यथा—

अद्यापि मे वरतनोर्मधुराशि तस्या  
यान्यर्थवन्ति न च यानि निरर्थकानि।  
निद्रानिमीलितदृशो मदमन्थरायाः  
तान्यक्षराणि हृदये किमपि घ्वनन्ति॥  
तथा  
अद्यापि तां भुजलतार्पित कण्ठपाशाम्  
वक्षस्थलं मम पिधाय पयोधराभ्याम्  
ईषभिमीलितसलीलविलोचनान्ताम्  
पश्यामि मुग्धवदनां वदनं पिबन्तीम्॥

(आज भी मैं देख रहा हूँ कि उस मुग्ध मुख वाली रमणी को जिसने अपनी भुजा-लता को मेरे कण्ठ के चारों ओर पाश रूप में लपेट दिया था व अपने स्तनों से मेरे वक्ष स्थल को ढककर आधे मुँदे हुए नयनों की कोरों से चचलतापूर्वक मुस्कराते हुए मेरे वदन (अधर) का चुम्बन किया था।) इस काव्य में प्रेम के सूक्ष्म और रमणीय चित्र उपस्थित किये गए हैं। शैली सरल और उदात्त है और परिस्थिति विशेष के चित्रण में सकाम है। भावों में विविधता है प्रत्येक पद मानो अपने आप में मादक भावों और तीव्र आवेगों को समाये हुए है।

श्रृंगारतिलक, पुष्पवनविलास और राक्षसकाव्य नामक तीन अन्य गीति-काव्य कालिदास-विरचित बताये जाते हैं पर इनमें से केवल प्रथम ही कालिदास के स्तर का प्रतीत होता है। इसमें कुल 23 श्लोक हैं जिनमें से कुछ में वास्तविक कविता का सा आनन्द आता है। उदाहरण के लिए निम्न पद्य उद्धृत किया जा सकता है—

किं मे वक्त्रमुपेत्य चुम्बसि बलात् निर्लज्ज लज्जाकृते  
वस्त्रान्तं शठ मुञ्च शपथैः किधूर्तं निर्वञ्चसे ?  
क्षीणाहं तवरात्रिजागरवशात् तामेव याहि प्रियाम्  
निर्माल्योऽङ्घ्रितपुष्पदामनिकरे का षट्पदानां रतिः ?

(निर्लज्ज ! लज्जा के बहाने पास आकर मेरी इच्छा के विपरीत बलपूर्वक मेरा चुम्बन क्यों करते हो? नीच ! मेरा पल्ला छोड़ दो, झुठी कसमें खाकर मुझे धोखा क्यों देते हो? तुम्हारे लिए रात भर जागने के कारण मैं दुर्बल हो गई हूँ—(अपनी) उस प्रिया के पास जाओ। गले से उतार कर फेंके गये पुष्पहार के प्रति भ्रमरों में क्या आकर्षण हो सकता है?)

घटकर्पर कवि, जिसका काल निश्चित नहीं है, के इसी नाम के प्रसिद्ध काव्य में 22 श्लोक हैं और प्रत्येक पद्य में यमक नामक शब्दालंकार है। तथापि पद्य अनाकर्षक नहीं। कवि घट-कर्पर (फूटे घड़े) में उस व्यक्ति के लिए जल ले जाने को तैयार हैं जो यमक अलंकार के प्रयोग में उसे जीत ले। सम्भवतः इसी कारण उक्त कवि और काव्य इसी नाम से प्रसिद्ध हो गए। काव्य का विषय मेघदूत से बिलकुल विपरीत है। यहाँ वर्षा काल के प्रारम्भ में प्रेमिका अपने प्रवासी पति को मेघों के द्वारा संदेश भेजती है।

महाराज हर्षवर्धन के आश्रित कवि मयूर ने 'सूर्यशतक' नामक एक गीतिकाव्य लिखा है जिसमें कुष्ठ रोग से मुक्ति पाने के लिए 100 श्लोकों में सूर्य से प्रार्थना की गई है। कवि को यह रोग अपनी पुत्री के शाप से हो गया था क्योंकि उसके सौंदर्य का सूक्ष्म (अशोभन) वर्णन कवि-पिता ने अपनी कविता में किया था। यथा—

एषा का स्तनपीनभारकठिना मध्ये दरिद्रावती  
विभ्रान्ता हरिणी विलोलनयना संत्रस्तयूथोद्गता।  
अन्तः स्वेदगजेन्द्रगण्डगलिता संलीलया गच्छति,  
दृष्ट्वा रूपमिदं प्रियांगगहनं वृद्धोऽपि कामायते॥

(मोटे, भारी और कठन स्तनों वाली यह कौन है जिसका कटि प्रदेश अतिक्षीण है ? (जो) अपने समूह से बिछुड़ी हुई और (इस कारण) डरी हुई, थकी हुई और चंचल नयनों वाली हरिण सी (यह कौन है?) मदमाते हाथी के गण्डस्थल से टपकने वाले मद के समान जिसके शरीर पर स्वेद (पसीना) है और मदमत्त सी चल रही है? प्रिय अंगों वाले इस उद्धेग यौवन को देखकर (तो) वृद्ध भी कामासक्त हो उठता है।)

कुछ मुक्तक श्लोक, प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि विरचित भी बताए जाते हैं। पर यह काल्पनिक ही प्रतीत होता है। यथा—

पाणी शोणतले तनूदरि दरक्षामा कपोलस्थला

विन्यस्तांजनदिग्धलोचनजलै किं म्लानीमानीयते ?  
 मुग्धे चुम्बतु नाम चंचलतना भूंगः क्वचित् कन्दलीम् ?  
 उन्मीलन्वमालतीपरिमलः किं तेन विस्मर्यते ?

(हे क्षीणकटि वाली रमणी, कज्जलधार संयुक्त आंसुओं के बहने से मलिन कपौल वाली होकर और कपोल को रक्त हथेली पर रख कर क्यों उदास बैठी हो? दीवानी, चंचलतावश भ्रमर कभी चाहे आम्र-मंजरी का चुम्बन कर ले पर क्या वह विकचमान नव-मल्लिका के पराग को भूल सकता है?)

जयदेव समकालीन गोवर्द्धरन कवि ने आर्याछिन्द में 700 मुक्तक पदों की रचना की थी और इन्हें अकारादि अनुक्रम से व्यवस्थित किया। आर्यासप्तशती नाम से विख्यात यह कृति हाल की प्राकृत में लिखी गई सतसई की क्षुद्र प्रतिकृति होती है। हाल की इसी प्राकृत सतसई की अनुकृति पर बिहारी ने भी हिन्दी में दोहों की एक सतसई लिखी है।

### धार्मिक गीति-काव्य

धार्मिक गीतिकाव्य श्यामलादण्ड जिसके रचयिता कालिदास माने जाते हैं, के अतिरिक्त अश्वघोष (प्रथमशती) ने चण्डी स्तोत्र का रचना की जिसमें एक लम्बे काष्ठ खण्ड पर गदा की टंकार से धार्मिक संदेश दिया गया है। इसी प्रकार सिद्धसेन दिवाकर (5वीं शती) से जैन तीर्थकरों की प्रशंसा में कल्याण मन्दिर-स्तोत्र की रचना की।

महर्षि-मर्दिनी चण्डी की स्तुति करने वाले 102 स्रग्धरा छन्दों से युक्त चण्डी शतक नामक एक धार्मिक गीति काव्य की रचना का श्रेय बाणभट्टे को दिया जाता है। पर यह रचना बाण के शैलीगत वैशिष्ट्य से वंचित है। इससे अच्छी शैली तो मयूर (बाणभट्टे के ससुर) की प्रतीत होती है जो यमक व अनुप्रास अलंकारों से सम्पन्न है और एक प्रकार से दण्डी द्वारा प्रदर्शित गौड़ी शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है। बाण व मयूर के समकालीन ही राजशेखर और मतंगदिवाकर को भी रखा जाता है। इनमें से परवर्ती कवि को कुछ लोग भक्तामरस्तोत्र का रचयिता बताते हैं जो कि ऋषभदेव की स्तुति पदों का संग्रह है। भक्तामरस्तोत्र में कुछ पद निश्चय ही उच्च-कोटि की कविता के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जैसे—

अल्पश्रुतः श्रुतवतां परिहासधाम,  
 त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।  
 यत्कोकिलः किल मधौ, मधुरं विरौति,  
 तच्चारु-चूतकलिका निकरैकहेतुः॥

बौद्ध-स्तोत्रों में से अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र हर्षबर्द्धन की कृति बताया जाता है। सर्वज्ञानमित्र नामक एक परवर्ती लेखक ने बौद्ध मातृका (देवी) तारा की स्तुति में स्रग्धरा स्तोत्र की रचना की।

अनेक भक्ति-स्तोत्र प्रसिद्ध दार्शनिक भगवान् श्रीशंकराचार्य द्वारा विरचित बताये जाते हैं। शिवापराधक्षमापण स्तोत्र नामक उनकी कृति से एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें संसार की नश्वरता सात्विक शब्दों में प्रकट की गयी है—

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं  
 प्रत्यायन्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।  
 लक्ष्मीस्तोयतरंगभंगचपला विद्युच्चलं जीवितम्  
 यस्मान्मां शरणागतं शरणदस्त्यं रक्ष रक्षाधुना॥

(हमारी दृष्टि के सम्मुख ही प्रतिदिन आयु नष्ट हो रही है और यौवन क्षीण होता जा रहा है। गए हुए दिन लौटते नहीं क्योंकि काल सबका भक्षक है। लक्ष्मी जल की चंचल लहरों के समान भंगुर है और जीवन विद्युत के समान चंचल है। हे शिव ! तुम सबके शरणदाता कहलाते हो और मैं तुम्हारी शरण आया हूँ। अब मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।)

देव्यापराधक्षमापण-स्तोत्र में भक्तिभाववश भगवान् श्री शंकराचार्य मानो विह्वल हो जाते हैं और कहते हैं—

विधेरज्ञानेन द विणविरहेणालसतया,  
 विधेयाशक्यत्वात् तव चरणयोर्याच्युतिरभूत्।  
 तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे  
 कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥

(हे माता ! विधि सम्बन्धी अज्ञान से, द्रव्य की कमी से, आलस्यवश अथवा विधि निर्वाह से असमर्थता के कारण यदि तुम्हारी चरण-सेवा में मुझ से कोई त्रुटि हो गयी हो तो सबका उद्धार करने वाले हे शिवे ! मेरे अपराध को क्षमा कर देना क्योंकि कुपुत्र का होना तो सम्भव है पर माता कदापि कुमाता नहीं हो सकती।)

भावनाष्टक और आनन्दलहरी भी श्री शंकराचार्य की कृतियाँ मानी जाती हैं। आनन्दवर्द्धनाचार्य का देवीशतक प्रमाणित करता है कि उच्चकोटि के आलोचक के साथ ही साथ वे मध्यमकोटि के कवि भी थे। अन्य धार्मिक गीतिकाव्यों में उत्पलदेव (1925 ई.) कृत स्तोत्रावली, कुल शेखर (10वीं शती) कृत मुकुन्दमाला, लीलाशुक (11वीं शती) कृत कृष्णालीलामृत और श्री रूप गोस्वामी (12वीं शती) कृत पद्यावली उल्लेखनीय है।

### परवर्ती धार्मिक गीतिकाव्य

इस युग के बाद तो धार्मिक स्तोत्रों की बाढ़ सी आ गई। उनमें से अनेक वास्तविक कविताएँ थीं। अकेले वेदान्तदेशिक (1268-1369 ई.) ने 25 गीतिकाव्यों की रचना की। पादुकासहस्र नाम की उनकी एक रचना में भगवान श्रीराम की पादुकाओं की प्रशस्ति में लिखित 1000 श्लोक मिलते हैं। दूसरे उल्लेखनीय गीतिकार अप्पय-दीक्षित (1554 ई.) हैं जिनके काव्य में कल्पना की महत्ता और मौलिकता मिलती है। अन्य कृतियों में नारायण भट्ट (1558 ई.) की नारायणीय, मधुसूदन सरस्वती (1600 ई.) की आनन्दमन्दाकिनी, पण्डितराज जगन्नाथ (1590-1665 ई.) की सुधालहरी, अमृतलहरी, लक्ष्मीलहरी, करुणालहरी और गंगालहरी, नीलकण्ठ दीक्षित (1650 ई.) का आनन्दसागर-स्तोत्र और शिवोत्कर्षमेजरी, रामभद्रदीक्षित कृत (1700 ई.) रामबाणस्तव तथा नारायणतीर्थ की (1700 ई. विचरित कृष्णालीलातरंगिणी उल्लेखनीय है।

### संस्कृत गीतिकाव्य की विशेषताएँ

संस्कृत के श्रृंगारिक गीतिकाव्य या तो महाकवि कालिदास विरचित मेघदूत के समान वर्ण्य विषय प्रधान होते हैं या भर्तृहरि के शतकों के समान उपदेशात्मकता लिए रहते हैं अथवा अमरुशतक के श्लोकों के समान मुक्तक होते हैं। मुक्तक श्लोकों के एक पद्य में ही वर्ण्यविषय की परिपूर्णता अपेक्षित होती है। इसलिए इस कोटि का काव्य संक्षिप्त एवं सुन्दर होता है। सामान्यता के स्थान पर ऐसे पद्यों में प्रेम के उदात्त पक्ष के प्रदर्शन का अधिक अवसर रहता है। इनमें वर्णित भावनाएँ वैयक्तिक के स्थान पर कलात्मक होती हैं। जहाँ कहीं वैयक्तिक भाव व्यक्त भी हुए हैं वहाँ व्यक्ति संसार भर के नायक नायिकताओं का प्रतिनिधित्व करता है।

परवर्ती गीतिकाव्य में आलंकारिक चमत्कार का प्राधान्य उपलब्ध होता है और कविता के सौन्दर्य और उदात्तता के स्थान पर परम्परागत 'साहित्यिक सिद्धान्त' उत्कृष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। प्रचलित मुहावरों द्वारा एक जैसे ही चरित्रों का वर्णन किया गया है। श्रृंगार के विभिन्न अंगों के स्पष्ट विभाजन से कविता अधिक शैली प्रधान बन गई है तथापि यह तो मानना पड़ेगा कि श्रमसाध्य महाकाव्यों में उपलब्ध वातावरण की तुलना में मुक्त श्लोकों में अपेक्षाकृत कम एकरूपता है। इन मुक्तकों में काव्य-लालित्य की मोहक स्थितियों के दर्शन होते हैं तथा इनमें भक्ति, श्रृंगार एवं नीति समन्वित रूप से प्राप्त होती है।

इन समस्त गीति-काव्यों में भारतीय प्रकृति सम्पदा का विशिष्ट योगदान है। अन्य पुष्पों की अपेक्षा कमल का वर्णन अधिक हुआ है। एक पद्य में तो कमल जीवन का सुन्दर प्रतीक बनकर आया है—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्  
भास्वानुदेष्यति हसिष्यसि पंकजश्रीः  
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे  
हा हन्स ! हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार॥

पक्षियों में चातक आत्मसम्मान का प्रतीक है। आँखों से चन्द्रमुखी की सुधा का पान करने वाले प्रेमी का वर्णन करते हुए चकोर का उदाहरण दिया गया है। बिरही प्रेमी युगल की अवस्था चक्रवाक पक्षी के माध्यम से वर्णित है। भ्रमरों का गुंजन, कमल-पुष्पों का पराग, चन्द्रिका, पुष्प गन्ध तथा आम्रमंजरी से प्रेरित होकर कोकिल का गायन लज्जानम्रमुखी भारतीय रमणियों के सौन्दर्य वर्णन हेतु पृष्ठभूमि प्रदान करता है इसलिए इन गीति-काव्यों ने हाइने जैसे अगणित यूरोपीय कवियों को अनेक गीति-काव्य लिखने के लिए प्रेरित किया।

संस्कृत के धार्मिक गीति-काव्य को स्पष्टतः दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वर्ग में दार्शनिक और दूसरे वर्ग में रहस्यवादी मुक्तक आते हैं। काव्य की इन दोनों कोटियों में यद्यपि वैयक्तिक वैशिष्ट्य का समावेश होता है तथापि प्रथम कोटि बुद्धि को प्रभावित करती है तथा दूसरी भावों को प्रेरणा प्रदान करती है। मध्युगीन भक्ति आन्दोलन ने भक्ति के धार्मिक भावों को लौकिक प्रेम के रूप में वर्णित करने की एक नई दिशा दिखाई। इस प्रवृत्ति का श्रेष्ठ उदाहरण गीत-गोविन्द है।

ये कवि मुख्यतः भक्त थे अतः मुक्तवातावरण में जी सके और इसलिए ऐसी कविता लिख सके जो आलंकारिक आडम्बर से मुक्त थी। थोथे पाण्डित्य के प्रदर्शन के भाव से मुक्त इन कविगणों में यह हृदय की कामनाओं का निर्बन्ध प्रकटीकरण पाते हैं। दूसरी ओर दार्शनिक स्तोत्र हैं जो पाण्डित्य-सन्दर्भ-मण्डित होने के कारण अन्य शास्त्रों के समान टीका की सहायता से ही पढ़े जा सकते हैं।

तीनों प्रकार के गीतिकाव्यों में संगीत की प्रमुखता एवं लयात्मकता होती है। सहृदय संवेद्यता, जीवन की मार्मिक अनुभूतियों, सुख दुःख, प्रसाद और विवाद का विशद वर्णन, सुकुमार भावों की कोमल पदों में मधुर अभिव्यक्ति आदि इन काव्यों की मुख्य विशेषताएं हैं। इनमें गौडी शैली, समासों का अधिव्य और पाण्डित्य प्रदर्शन का सर्वथा अभाव है। क्योंकि गीति काव्यों में सुकुमार प्रकृति, श्रृंगार, भक्ति, नीति, उदात्त भावनाएं और जीवन का यथार्थ रूप में चित्रण किया गया है अतः इनमें कोमल कान्त पदावली, सरल, सरस भाषा और रस माधुरी के दर्शन होते हैं।

गीति काव्यों में श्रृंगार, 'शान्त और वीर रसों का मुख्यतः चित्रण हुआ है। श्रृंगार के संभोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों का सुन्दर विश्लेषण हुआ है। कोमल भावों की प्रधानता होने के कारण इनमें अद्भुत, भयानक वीभत्स, आदि रसों का वर्णन नहीं होता है।

इनमें भावपक्ष की उदात्तता, भावों की धारावाहिकता, संवेदन और मार्मिकता मुख्य और कलापक्ष अत्यन्त गौण होता है। श्रृंगारिक गीतिकाव्यों में मुख्यतया रमणी-सौन्दर्य, नख-शिख वर्णन, हाव-भाव एवं श्रृंगारिक चेष्टाओं का चित्रण हुआ है। बाह्य सौन्दर्य के साथ-साथ उनके अन्तःसौन्दर्य, सहज प्रेम, लज्जा, दया, त्याग और करुणा आदि भावों का मार्मिक चित्रण हुआ है। धार्मिक गीति काव्यों में उदात्तता है। इनमें भौतिक एवं ऐन्द्रिय प्रेम की अपेक्षा नैसर्गिक एवं आध्यात्मिक प्रेम को महत्त्व दिया गया है। धार्मिक गीतिकाव्यों की भांति नैतिक गीतिकाव्यों में नैतिक आदर्शों का चित्रण है।

संस्कृत गीतिकाव्यों में भावों की कोमलता, विचारों की नवीनता, कल्पना की कमनीयता, अनुभूति की मार्मिकता, निरीक्षण की सूक्ष्मता, अलंकारों की छटा तथा छन्दों का समुचित विधान है।